

प्रकाशक
श्रीगुरुदेवनाथ भार्गव
अध्यक्ष गंगा-गुरुदेवनाथ-कार्यालय
लखनऊ

१९५५

मुद्रक
श्रीगुरुदेवनाथ भार्गव
अध्यक्ष गंगा-गुरुदेवनाथ-कार्यालय
लखनऊ

भूमिका

‘साहित्य’

अंगरेज़ी-भाषा में एक प्रसिद्ध कहावत है ‘Necessity is the mother of invention’, अर्थात् आवश्यकता आविष्कार की जननी है। किसी भी सुसंगठित इतिहास-प्रसिद्ध सभ्य समाज के आध्यात्मिक जीवन को सरल बनाए रखने के लिये उसकोटि के साहित्य की आवश्यकता होती है। हमारे पुरातन और समस्त आधुनिक शासकारों को इस सारगर्भित शब्द ‘साहित्य’ के विषय में किसी प्रकार का संदेह नहीं था, और न है। अतएव इसको परिभाषा (Definition) की सीमा में बाँध देने का उन्होंने कभी प्रयत्न तक नहीं किया और शब्दार्थ से समष्टि, एकग्रता, सहायता का भाव इत्यादि का बोध होने पर भी साहित्य शब्द के पर्याय में आज तक, काव्य, विद्या, शास्त्र, शास्त्र-समूह, पुस्तक-समूह, इत्यादि व्यापक अर्थों का निरसंकोच प्रयोग होता आया है।

अंगरेज़ी-भाषा में हम देखते हैं कि इस शब्द की भाव-व्याप्ति को गृथक्-गृथक् विद्वानों ने गृथक्-गृथक् परिभाषाओं में सीमाबद्ध करने की चेष्टाएँ की हैं, परंतु यथैव सफ़लताजन्य एकमत मात्र तक नहीं हो सचा है। कई कहते हैं, Literature is criticism of life (Arnold) अर्थात् साहित्य मानव-जीवन की आलोचना है, और वास्तव में यह बात भी कई अंशों में सत्य है। मानव-विचारों का एक धर्म अपने जीवन के भावों की आलोचना करना भी है। वास्तव में साहित्य में सत्य और सद्मनोय यथार्थता (Sincerity)

का जिसको कि कारबाइस महोदय ने सच्चे साहित्य का सबसे सचा और सरा गुण माना है, तब तक मध्यक समावेश नहीं हो सकता, जब तक मानव-विचार-स्फूर्तियों का अपने जीवन-कृत्यों के साथ घनिष्ठ संबंध स्थापित नहीं हो जाता। जब तक वे विचार-स्फूर्तियाँ अपने जीवन पर आलोचक की दृष्टि से भाव प्रकट कर अपनी उपादेयता नहीं सिद्ध कर देंगी, तब तक उनकी स्थिति का कोई स्थायी प्रमाण नहीं माना जा सकता। अतएव वास्तविकता की दृष्टि से साहित्य की व्याख्या व समीक्षा यों अवश्य की जा सकती है, परंतु वह अपूर्ण है। केवल "जीवन की आलोचना" से ही साहित्य-शब्द की व्याप्ति निर्दिष्ट नहीं की जा सकती। शब्द का अर्थ और भी विस्तृत है। एक दूसरे पारचाय विद्वान् ने साहित्य की व्याख्या और उपादा विस्तृत, परंतु ता भी अपूर्णरूपेण की है। यथा—Literature consists of the best thoughts of best persons reduced to writing. अर्थात् सर्वश्रेष्ठ पुरुषों के सर्वश्रेष्ठ विचारों का लिखित संहिता को साहित्य कहते हैं। यह व्याख्या पूर्वापेक्षाकृत अवश्य उपादा व्यापक है, परंतु यदि हम इसे एक बार मान भा लें ता भी यह नहीं जान सकते कि साहित्योत्तम 'सर्वश्रेष्ठ विचारों' का विशेषण क्या है, और उनके उत्पादन के उग क्या है। सारांश, यह व्याख्या केवल मस्तिष्कापयोगी है, हृदयमाहिणी नहीं। हमी तरह अन्यत्र विद्वानों ने भी इस शब्द की व्याख्या करने की—गागर में सागर भर देने की—पेशा की है, परंतु सफलता कहीं ?

साहित्य-शब्द की व्याप्ति और उसका दिग्गतर

हमारे विचार में ता साहित्य की सीमा उसी प्रकार निर्धारित नहीं की जा सकती, जिन प्रकार मानव-विचार का अथवा परमात्मा के अस्तित्व की। साहित्य मानव-जीवन के उत्कृष्टतम विचारों का समुच्चय, विद्युत्, सूक्ष्मातिसूक्ष्म, दिप्तरूप, आदर्श-भाव है। दरीन-शास्त्र-के सिद्धा-

मानुसार आदर्श की व्याप्ति निरसीम है ; वह प्रत्येक वृष्य गमनशील, उन्नतिशील है ; जड़-स्थविर नहीं । यह आदर्श सृष्टि के आदि-काल से मानव-विचारों का साथी रहा है । इसीलिये 'साहित्य' कहलाता है और प्रलयोपरान्त भी उस चित्कला के साथ रहेगा, जिसका वर्णन भगवद्गिर ने इस अद्वितीय रत्नोक्त में किया है—

दिकालाशनवच्छिन्नाऽनन्ताविन्मात्रमूर्तये ;

स्वानुभूत्यैकमानाय नमः शान्ताय तेजसे ।

हमारी तो यह भी रुढ़ धारणा है कि तद्रूप तद्गुणान्वित होने के कारण साहित्य का सृष्टि-कर्ता की विभूतियों के साथ अभिन्नत्व का संबंध है । अतएव भगवद्गिर का उद्धृत रत्नोक्त परमात्मन् और साहित्य-त्वात्मन् जगदीश्वर दोनों की आराधना के अर्थ में समान भाव से प्रयुक्त हो सकता है ।

साहित्य-वृद्धि की कठिनाइयाँ

हमें यह प्रकट करते हुए अत्यंत दुर्घ होता है कि हमारे हिंदी-साहित्य के ध्यायक रूप को अजंकृत और सुसंगठित करने के लिये मातृभाषा-सेवकों ने प्रयत्न करना प्रारंभ कर दिया है, और दिन-प्रति-दिन वे इस देव-मंदिर को सर्वोत्तम करने की भरसक चेष्टा कर रहे हैं । देश-सेवा, समाज-सेवा, और ईश-सेवा का इससे श्रेष्ठतर कोई अन्य मार्ग नहीं हो सकता । परंतु जहाँ कई सद्विचारप्रेरित मानु-भाषा के सच्चे सेवक रात-दिन अपनी आदर्श-सिद्धि के शुभकार्य में लगे हुए हैं, वहाँ कई एक दूसरे, बुद्धिहीन, प्रतिनिविष्ट धी, मिथ्यादर्शकपिस्तु और प्रतिष्ठा-लोभी पुरुष अपनी वाक्-स्वतंत्रता का दुरुपयोग कर ऐसे सरुचे सेवकों के शुभ-कार्यसंपादन में विरोध और विघ्न डालने के लिये भी उद्यत रहते हैं । प्रायः देखा गया है कि इस प्रकार के विरोधकारी पुरुष या तो ईर्ष्या-वश अथवा अज्ञान-प्रतिष्ठ साहित्य-सेवियों की उत्कृष्ट कृतियों का भस्म

अनुकरण कर बरा प्राप्ति की चेष्टा करने हैं, जिससे कि मजे साहित्य-मेढियों के कार्य में बाधा पड़ती है; अथवा ये मित्याभिमानों छोग जन-समाज की प्रसन्नता के हेतु बेचारे कार्य कर्ताओं के मूढमा-तिमूढ विद्वाँ की भयंकररूपेण विरक्तारित कर निर्वोध जनता के समक्ष प्रकट करते हैं, तथा जेथरु की जन्म-कारोलादिनी, बपार्य गुण-हरिनी विशेषताओं को दिशाएँ स्मरण हैं; जिससे कि स्पर्ध ही बेचारे साहित्य-मेढी अथवा कवि की आत्मा को दुःख होता है, और इन्हे अपने कार्य में अक्षि और विरक्ति होने लगती है। आश्चर्य तो यह है कि जइनुदि और अपने हिताहित को स्पर्ध न विचार मचनेवाला समाज ऐसे पतित जनों को भी 'समाजोचक' के उच्च, गौरवरूप पद से अलङ्कृत कर देता है।

साहित्य अनुकरण का वाञ्छनीय आदर्श

हमारे उपर्युक्त कथन का यह आशय नहीं है कि अनुकरण करना साहित्य की दृष्टि से कोई पाप है, अथवा साहित्यिक आलोचना करना कोई बुरी बात है। इसके विपरीत अनुकरण को हम साहित्य का एक उत्कृष्ट साधन मानते हैं और आलोचना को साहित्य का सर्वश्रेष्ठ हित-संबंधक मार्ग। यों तो देखा जाय, तो विरक्त में समष्टि की स्थिति अनुकरण-साधन के द्वारा सुसाध्य है, और उसी पर प्रापरा: निर्भर है। काव्य-शास्त्र प्राकृति-सौंदर्य और मानव-प्रकृतिसौंदर्य का एक आभास-मात्र है। सरांश, अनुकरण एक पवित्र और उपादेय स्वाभाविक वृत्ति है। परंतु साथ-ही-साथ यह भी देखना है कि अनुकरण का सदुपयोग करना ही हमारा कर्तव्य है; उसका दुरुपयोग करना नहीं। और, हमें तो केवल अनुकरण के दुरुपयोग के प्रति आपत्ति है। रही यह बात कि सदुपयुक्त अनुकरण और दुरुपयुक्त अनुकरण में क्या अंतर है, यह तो साहित्य के परिशीलन करनेवाले सहृदय देखते ही पहचान सकते हैं। इस पहचान का संबंध व्यक्तिगत इच्छा

के साथ है। इसके लिये किसी प्रकार के नियम अवधार सूत्र न तो बने हैं, और न बन ही सकते हैं।

साहित्यिक भाषापहरण का दोषापहरण

कुत्सित अनुकरण के घतगत भाषापहरण (Plagiarism) का दोष भी देखा जाता है। इससे भी साहित्य का बहुत अहित हो रहा है। साहित्य की चोरी वर्तमान हिंदी की अवस्था में एक साधारण व्यापार हो रहा है। उसके अवरोध के लिये हिंदी-साहित्य-शासक-मंडली में अब तक कोई उपयुक्त न्यायालय भी व्यवस्थित नहीं हो चुका है। अतएव अपहरणकर्ताओं का भी डरसाह, इस अपेरे को देखकर, बढ़ चला है और वे दिन-बढ़ादे भाषापहरण कर मालामाल हो रहे हैं। यही नहीं, वर्तमान हिंदी-जगत् में उन्हें अपनी इस अपहरण दक्षता के लिये प्रतिष्ठा-पुरस्कार की भी प्राप्ति होते देखी गई है। इस दुःस्थिति को मिटाने के लिये सर्वे समालोचकों की एक परिषद् (Academy of Literary Critics) की आवश्यकता है, जो निष्पक्ष भाव से न्याय करती हुई यह निर्णय कर सके कि अमुक अनुकरण तो साहित्य के लिये अहितकर है, जो यथार्थ में किसी प्रतिष्ठित कवि की ईर्ष्यावश चोरी कही जा सकती है; और अमुक अनुकरण सदुपयुक्त अनएव साहित्यिक हित-संबंधक है। इसी प्रकार यही परिषद् भाषापहरण के दोष और गुणों को भी पहचान कर यह घोषित कर सके कि अमुक भाषापहरण तो, केवल कवियों के भावों का अकस्मात् सार्मजस्य-मात्र है और अमुक भाषापहरण चोरी है। परंतु जब तक इस प्रकार की किसी प्रतिष्ठित और सम्मान्य परिषद् का हिंदी-जगत् में आविर्भाव नहीं होता, तब तक साहित्याल्पादनकार्य को सच्चा डरसाह नहीं मिल सकता और न तब तक हिंदी-साहित्य में किसी प्रकार की व्यवस्था ही स्थापित हो सकती है।

का स्वरूप है, और इसे उसकी इसी प्रकार प्रतिष्ठा करनी चाहिये ।

सच्चे समालोचक का दिव्य रूप हम ऊपर दिखा चुके । अब हम समालोचक द्वारा प्रयुक्त और प्रयोजनीय कई एक साहित्य-साधनों की चर्चा करेंगे । इसे यह प्रथम ही अत्यंत रोद के साथ कहना पड़ता है कि अभी तक हिंदी-साहित्य में आदर्श समालोचक का नितान्त अभाव है । परिष्कृतः समालोचना के विविध साधनों का विस्तृत रूप में प्रयोग भी इस समय दृष्टिगोचर नहीं होता । जो कुछ आलोचना होती भी है या तो वह अत्यंत कटोर वाक्यांश-प्रहारों के रूप में की जाती है, अन्यथा अतिशय प्रशंसा और आदुकारिता से भरी होती है । यथार्थ प्रशंसा किंवा यथार्थ निंदा का सब ओर छोप-सा हो गया जान पड़ता है ।

आलोचना के प्रकार

आदर्श समालोचना के, भारतीय और पारम्पर्य साहित्यकारों के मतानुसार, दो मोटे भेद किए जा सकते हैं । एक तो वाक्यार्थ समा-लोचना, जिसके द्वारा किसी साहित्यकृति के मुख्य-अवगुणों का विवे-चन, यथार्थ और सीधे-सादे ढंग से स्पष्ट प्रशंसा अथवा निराकृति के रूप में दिया जाय । दूसरी अक्षया-मूलक स्वयं-समालोचना । पहली स्पष्ट, स्पष्ट, कृष्ट, सीधा-सारी, यथार्थ-मूलक आलोचना है । वह सर्वज्ञतावा बुद्धि-गम्य है अथवा : — मोक्षकता का उभय-मिति-समाय होता है । यह

का

व और कर

अथवा अथ—

का विशेष व्यापक

है) । अन्तर्गत में

होगे मूल नहीं

हो सकती है। समालोचना भी रोचक ढंग से की जा सकती है। भी रसामक बनाई जा सकती है। ऐसी समालोचना कृपादा हृदय-आ-कृपादा मनोरंजक, अतएव विशेष काव्य-गुण-संपन्न होने के कारण साहित्य की अपेक्षाकृत कृपादा बहुमुख्य, स्वाधी संवृत्ति सम-जा सकती है और पारचाय्य साहित्यों में अब भी समझी जाती है परंतु हिंदी-साहित्य में अभी तक इस साहित्यांग को रोचक काव्यगुणसंपन्न और हृदय-आही बनाने के कोई पूर्वचिह्न भी दिखाई नहीं देने लगे हैं, इसका हमें खेद है। आशा है, समय-परिवर्तन के साथ यह कमी भी शीघ्र पूर्ण हो जायगी।

रोचक आलोचना-शास्त्र

प्रकार-भेद से दूसरी समालोचना भी कई प्रकार की होती है। हिंदी में इनका नितांत अभाव होने के कारण हम विस्तृत अंगरेजी तथा संस्कृत-साहित्य से लेकर इनके रूपांत और रीति उद्धृत करेंगे। अंगरेजी-साहित्य में रोचक आलोचना के अंतर्गत कई भेद हैं। यथा—

(१) Farce अर्थात् (प्रहसन अथवा दुर्गम्यजिका), (२) Burlesque (भांड अथवा भाण), (३) Redicule (हेला), (४) Satire (आपेप), (५) Parody (अनुकरणम् अथवा अनुकरण काव्यम्)। ध्यान रहना चाहिए कि आलोचना के इन रोचक साधनों को अपने समय के सर्वश्रेष्ठ अंगरेजी-साहित्यिक महारथियों ने अप-कृत और देदीप्यमान बनाया था। अंगरेजी-गद्य-श्लेषक-शिरोमणि डॉक्टर जानसन, आपेप-काव्य के सर्वश्रेष्ठ लेखक कविबर पोप, अंगरेजी-उपन्यास-साहित्य के जन्म-दाता फ्रीडिग महोदय, आलो-

चक-श्रेष्ठ ड्रायडन तथा सर्वश्रेष्ठ प्रहसनकार रिचर्ड तथा वायटेश (फ्रीच) और आधुनिक समय के आलोचनात्मक अनुकरण के मुख्य लेखक दिश्टन, स्टीयन्स, स्टीवार्ड वॉकर इत्यादि महानुभावों ने

निरवधारितपद कायम के ल होने हुए देखने में ही नवीनता को
 पुनः बनाना, याने हृदय में पैदा हुई अनाम्यार्थ और लज्जामय रूपों
 के भावों का परिचय-साधन देना है। हमारी समझ में, प्रेमिका के
 प्रथम स्फुरणकाः ही, कई एक मुखक भी मनीष-मनीष साहित्यिक
 आदतों की दृष्टि में भी हुए साहित्य क्षेत्र में चरनीय होकर नए
 नए साहित्यिकों को पूर्ण करने के लिये नहीं बचन हो जायेंगे, जब
 उनकी कोमल (Sensitive) आदतोंको और जब आदतों का
 विशेष करनेवाले अरिष्ट-बुद्धि और जड़-दृष्टि दुराकीनक माना जा
 सोवकर उनकी स्वागत करने लगेंगे। क्या हमें यह मान्य नहीं है कि
 हमारी प्रकार की कोमल महत्वाकांक्षिका पुनः प्रेमिकामों के निराकार-
 लभ्य दुराधिप ने हमारे द्वितीय-साहित्य की आज यह अपेक्षा हो रही
 है। क्या हमें अब भी, 'तामस्य दूषोऽव्यभिक्ति मुखाया चारं जवं
 कायुरणाः विवर्गित'-वाची उक्ति को हृदय में रखकर अपनी पूर्ण
 हत अनुदारताओं और वारों का प्रापरिचय नहीं कर साधना चाहिए।
 संसार के और-और साहित्यों की ओर देखकर भी हमको अपनी
 आत्मधातिर्मा नीति को बढा देना आवश्यक प्रतीत होता है। क्या
 हमें संसार का इतिहास प्राप्य प्रमाणित नहीं कर बताया है कि
 अपने-अपने सर्वश्रेष्ठ कवि और साहित्य-सेवियों के प्रति हृदय प्रकार का
 आयाचार करने के लिये आज भी जैंगनी-साहित्य, जैव-साहित्य,
 संस्कृत, ग्रीक और लैटिन-साहित्य, यही क्यों, पृथ्वी-मंडल के प्रायः
 समस्त साहित्य जगत् के मारे नतमस्तक हो रहे हैं। क्या हमें,
 बाटे, शेरसपियर, बहंसुवर्ण, शैली, कीट्स, चैटरटन, भवभूति और
 मास इत्यादि कवियों के द्योत शिक्षा देने को पयोस नहीं है। क्या
 महाकवि भवभूति की, "उत्पत्यते मम कोऽपि समानधर्मो, काधोऽर्थ
 निरवधिर्विपुला च पूष्णी" वह गर्वपूर्वक अपील हमारे मन के मोड़
 को नहीं मिटा सकती। यदि हमारी ऊपर लिखी हुई अपील में

कुछ भी तथ्यांश है, तो जिनके कंधों पर साहित्य का भार और उत्तरदायित्व है, उनको अपनी वर्तमान संकुचित नीति में, साहित्य की हित-रुष्टि से, उदारता का समावेश अवश्य करना श्रेष्ठ है। हमें विश्वास है कि आज जब चारों ओर देश-सेवी महानुभावों का देशोत्थान के हेतु प्राणपण से प्रयत्न हो रहा है, उस शुभ आशागर्भित काज में साहित्यिक दिग्गजों को भी उपनिषद् के इस वाक्य की निस्संकोचरूपेण धोपणा कर लेनी उचित है—“उत्थानस्य आप्रतस्य प्राप्य वराद्विबोधतः”

रतिरानी का साहित्य में स्थान

प्रकृत-प्रवास के उपजल में विनय करते हुए तथा रतिरानी को भेंट करते हुए हम पाठकों के प्रति अपने मंतव्य को संक्षेप में प्रकट कर देना अपना कर्तव्य समझते हैं। ‘रतिरानी’ के लेखकों ने उसे जिसने में और साहित्य-क्षेत्र में उपस्थित करने में आलोचनात्मक दृष्टि को ही प्रधानता दी है। इसे भेंट करते हुए, कवि होने का अथवा निर्दिष्ट आदर्श के अनुसार समालोचक होने का कृपा गर्व वे नहीं करते। उन्होंने तो केवल इस रोचक आलोचना के नवीन मार्ग का उद्घाटन कर प्रतिभासंपन्न कवियों और आलोचकों के प्रति प्रयोगात्मक (Practical) रूप में यह निवेदन करना चाहा है, जिससे कि वर्तमान और भविष्य के उग्ररूप पद्य-पदार्थक, साहित्य-सेवक इस मार्ग को आदर्श तक पहुँचने का प्रयास करें। यों तो हमारे हिंदी-साहित्य में अभी कई अंग रिक्त हैं, जिनको केवल यथार्थ प्रयास और सखी चेष्टा के बल हमारे उत्साही विद्वान् परिपूर्ण कर सकते हैं। हम कहीं तक गिनाएँ, अपने विविध अंगों और प्रभेदों के सहित नाटक-साहित्य, गल्प-साहित्य, निबंध, आलोचना, पत्र-साहित्य, जीवन-चरित्र (पर और स्वनिर्मित) इत्यादि सभी साहित्यांगों को परिपूर्ण करना हमारा धर्म है। इस सामाजिक युग में, अब कि हम समाप्त संसार की उत्कृष्ट

त्रिकहानिप्रद कारण के न होते हुए केवल यों ही नवीनता
 बुरा बताना, अपने हृदय में पैठी हुई अमामर्त्य और तज्जन्य ईश्वर
 के भावों का परिचय-मात्र देना है। हमारी समझ में, प्रतिमा
 प्रथम स्फुरणकाल में, कई एक युवक भी नवीन-नवीन साहित्यिक
 आदर्शों को हृदय में भरे हुए साहित्य-क्षेत्र में अवतीर्ण होकर नए-
 नए साहित्यांगों को पूर्ण करने के लिये तभी उद्यत हो जायेंगे, जब
 उनकी कोमल (Sensitive) आकांक्षाओं और उच्च आदर्शों का
 विरोध करनेवाले अटिल-बुद्धि और जड़-हृदय दुरालोचक अपना इठ-
 छोड़कर उनका स्वागत करने लगेंगे। क्या हमें यह मालूम नहीं है कि
 इसी प्रकार की कोमल महात्वाकांक्षियों युवा प्रतिमामों के तिरस्कार-
 जन्य दुराशिष्ट से हमारे हिंदी-साहित्य की आज यह अधोगति हो रही
 है ? क्या हमें अब भी, 'तात्स्य कूपोऽयमिति मुखाणां चारं जलं
 कापुरुषाः पिबन्ति'-वाली उक्ति को हृदय में रखकर अपनी पूर्व-
 कृत अनुदारताओं और पापों का प्रायश्चित्त नहीं कर डालना चाहिए।
 संसार के और-और साहित्यों की ओर देखकर भी हमको अपनी
 आत्मघातिनी नीति को बदल देना आवश्यक प्रतीत होता है। क्या
 हमें संसार का इतिहास प्रत्यक्ष प्रमाणित नहीं कर बताता है कि
 अपने-अपने सर्वश्रेष्ठ कवि और साहित्य-सेवियों के प्रति हम प्रकार का
 आयाचार करने के लिये आज भी घेंगरेज़ो-साहित्य, फ्रेंच-साहित्य,
 संस्कृत, ग्रीक और लैटिन-साहित्य, यही क्यों, यूरोपी-मंडल के प्र.पः
 समस्त साहित्य जगत् के मारे नतमस्तक हो रहे हैं। क्या हमें,
 टॉले, शोसमपियर, व्हैट्सवर्थ, रीली, कीट्स, पैररटन, भवभूति और
 महाकवि भवभूति की, "उत्तारयते मम कोऽपि सामान्यता, कात्रोद्यत्
 रश्मिर्बिभुषा च पूष्णी" वह गर्व ? अर्थात् हमारे मन के मोड़
 नहीं मिला तकनी ? यदि हमारी ऊपर लिखी हुई अवीक में

कुछ भी सप्यांश है, तो जिनके कंधों पर साहित्य का भार और उत्तरदायित्व है, उनको अपनी वर्तमान संकुचित नीति में, साहित्य की हित-दृष्टि से, उदारता का समावेश अवश्य करना योग्य है। हमें विश्वास है कि आज जब चारों ओर देश-सेवी महानुभावों का देशो-त्थान के हेतु प्राणपण से प्रयत्न हो रहा है, उस शुभ आशागर्भित काल में साहित्यिक दिग्गजों को भी उपनिषद् के इस वाक्य की निःसंकोचरूपेण घोषणा कर देनी उचित है—“उपानामस्य व्याप्तस्य प्राप्य वराद्धिर्बोधतः”

रतिरानी का साहित्य में स्थान

प्रकृत-प्रयास के उपलक्ष में विनय करते हुए तथा रतिरानी को भेंट करते हुए हम पाठकों के प्रति अपने मतलब को संक्षेप में प्रकट कर देना अपना कर्तव्य समझते हैं। ‘रतिरानी’ के लेखकों ने उसे लिखने में और साहित्य-क्षेत्र में उपस्थित करने में आलोचनात्मक दृष्टि को ही प्रधानता दी है। इसे भेंट करते हुए, कवि होने का अपना निर्दिष्ट आदर्श के अनुसार समालोचक होने का क्या गर्व वे नहीं करते। उन्होंने तो केवल इस रोचक आलोचना के नवीन मार्ग का उद्घाटन कर प्रतिभासंपन्न कवियों और आलोचकों के प्रति प्रयोगात्मक (Practical) रूप में यह निवेदन करना चाहा है, जिससे कि वर्तमान और भविष्य के उज्ज्वल पथ-प्रदर्शक, साहित्य-सेवक इस मार्ग को आदर्श तक पहुँचने का चेष्टा करें। यों तो हमारे हिंदी-साहित्य में अभी कई अंग रिक्त हैं, जिनको केवल यथार्थ प्रयास और सच्ची चेष्टा के बल हमारे उत्साही विद्वान् परिपूर्ण कर सकते हैं। इस कठौं तक गिनारें, अपने विविध अंगों और प्रभेदों के सहित नाटक-साहित्य, गद्य-साहित्य, निबंध, आलोचना, पत्र-साहित्य, जीवन-चरित्र (पर और स्वलिखित) इत्यादि सभी साहित्यांगों को परिपूर्ण करना हमारा धर्म है। इस सामाजिक युग में, जब कि हम समस्त संसार की उत्कृष्ट

प्रतिभाओं का मिश्रण या-वेड़े निम्नपति पुस्तकों द्वारा कर सकते हैं। यदि हम आचार्य में वेड़े रहें, तो अक्षर हो हमें पीड़े पड़ना पड़ेगा। हिंदी को राष्ट्र-भाषा बनाने के लिये श्री भारत का अग्र राष्ट्रों में सबसे अधिक योगदान करने के लिये यह परामर्श है कि हम अपने से गंगा श्री गणेश हो जायें। कर्मयोग में इतना के साथ प्रवृत्त होना हमारा धर्म है, यह जगद्विषय के अधीन है।

यह 'इतिहास' शेषक आलोचना के अन्तिम प्रकारांतर्गत एक अनुकरण-काव्य (Parody) है। अनुकरण-काव्य किसे कहते हैं, इसका आदर्श क्षेत्रों में कहीं से लिया है। इसकी उद्देश्यता के क्या प्रमाण हैं। हमारे पुराने संस्कृत साहित्यिक रीतिकार इस प्रकार के साहित्य की रचना करने के लिये अनुमति देते हैं अथवा नहीं। अनुकरण-काव्य के पूर्ण दृष्टांत भी हमारे साहित्य में कहीं मिलते हैं अथवा नहीं। प्रवृत्त पुस्तक के लिखने के क्या कारण हैं, तथा यह साहित्य की किस प्रगति की रोचक आलोचना है—इन सब प्रश्नों का अति संक्षेप में हम पाठकों के समक्ष विवेचन करने का अब प्रयत्न करेंगे। पाठकों को पुस्तक को लेखकों का आकांक्षार्थ के अनुकूल संपादित पावेगा अथवा नहीं, इस विषय में सद्दय पाठक ही प्रमाण है, हम कुछ नहीं कह सकते।

अनुकरण-काव्य

हिंदी-साहित्य के लिये अनुकरण-काव्य (Parody) एक विज्ञ-कुल नवीन काव्यांग है। न तो इस साहित्यांग का यही नामोशब्द ही, और न इसका यही रूप ही संस्कृत साहित्यकारों के विचारांतर्गत गया है। ऐसा कहने से हमारा आशय यह नहीं है कि इस दंग के अनेक आलोचनात्मक साहित्य का हमारे विलुप्त संस्कृत-साहित्य में अस्तित्व है, और न हम यह कह सकते हैं कि इस दंग के साहित्यकारों का ही अभाव है। इसके विपरीत, हम यह प्रमाणित करने

की चेष्टा करेंगे कि इस काव्यांग-विशेष को संपादित करने में हमारे साहित्यकारों की राष्ट्रीय अनुमति अवश्य ली जा सकती है । विलुप्त संस्कृत-साहित्य में से छेकर हम कई एक रीतियों सोदाहरण अपने खेल के उभर भाग में उद्धृत करेंगे, जिनके आधार पर साहित्य में परमोत्कृष्ट कोटि के रोचक आलोचनात्मक काव्य, यथा द्रष्टव्य, भाष्य इत्यादि तथा अनुकरण-काव्य लिखे जा चुके हैं ।

सर्वप्रथम हम निरसंशय भाव से भीरु स्पष्ट-स्पष्ट यह कह देना चाहते हैं कि इस नूतन ढंग के काव्य के रचने के लिये हम आधुनिक अँगरेजी-साहित्य के उतने ही अध्ययन हैं, जितने कि हमारे पुरातन संस्कृत साहित्य के । इसका आशय हमने अँगरेजी और संस्कृत दोनों साहित्यों के अनुबुद्ध स्थापित किया है । अत्यन्त स्वाभाविक ही है कि हम अपने उपहारियों के प्रति हृदय से कृतज्ञता प्रकट करें, और उनही निर्दिष्ट रीतियों का उल्लेख यहाँ करें ।

अनुकरण-काव्य की परिभाषा व व्याख्या

अँगरेजी में अनुकरण-काव्य को हास्य-रस-प्रधान काव्य माना है । साहित्यिक दृष्टि-चक्षु को हास्य-रस पर अवर्द्धित कर यह व्यवहार प्रथमरी रोचक आलोचना की रचना करना है । अनुकरण-काव्य की अभ्य देना है । यहाँ हम जुलाई मास, सन् १८४२ ई०, के क्वार्टरली रिव्यू (Quarterly Review) के इस विषय के एक खेल में से उद्धृत कर अनुकरण-काव्य की परिभाषा को दे देना यहाँ उचित है । यथा—

"A Composition either in Verse or Prose modelled more or less closely upon an original work or class of original works—but the turning the serious sense of such originals into ridicule by its method of treatment."

अर्थात् "गद्य अथवा पद्यमयी ऐसी रचना जो किसी
 ग्रंथ अथवा ग्रंथ-ध्रेणी के आधार पर लिखी गई हो—परंतु अथवा
 से इस प्रकार लिखा गई हो कि उन आधारभूत ग्रंथ अथवा ग्रंथ
 के गंभीर भावों को उपहास-स्वरूप में परिवर्तित कर दे।"

अवतरण का भाव स्वतः स्पष्ट है। परिभाषांतर्गत *Ridicule*
 (उपहास) शब्द से हमारा क्या तात्पर्य है, यह भी स्पष्ट कर दे
 उचित है। इस विषय में हम एक प्रसिद्ध अँगरेज़-आलाचक
 रातिकार महाद्वय का बड़ा ही मनाहर, रुचिकर और विशद् व्याख्या
 का यहाँ उल्लेख करते हैं, जिसमें कि 'उपहास' शब्द का दोषा-
 पहरण होकर उसका समुच्चय दिव्य स्वरूप प्रदर्शित होगा। यथा—

"Ridicule is Society's most effective means
 of curing inelasticity. It explodes the pom-
 pous, corrects the well-meaning eccentric, cools
 the fantastical and prevents the incompetent
 from achieving success."

"Truth will prevail over it; falsehood w.
 cower under it and it is true that when reason
 indignation, entreaty and menace fail, ridicule
 will often cause a government to abandon a
 bill or a lover a mistress."

"अर्थात् जिन समाज के जिये उसकी स्थिति-स्थापक्य बिहिन
 अवस्था का निराकरण करने के लिये उपहास सर्वश्रेष्ठ साधन है।
 जेसक का प्रमाद दूर करता है, मायावा जेसक के माया-बाह का
 हन करता है, और अवाग्य जेसकों को उनकी सरल-सदृशता प्राप्ति
 बाधक होता है।"

इस पर यह आवसि होना स्वाभाविक है कि यह उपहास झूठा और ईर्ष्या-प्रेरित हुआ—तो—? “तो साथ ही इसके विरुद्ध सदा विजय ही होगी, परंतु अन्ततः का दमन यह अवश्यमेव कर देगा” ।

आगे चलकर उपहास-साधन की साहित्यिक और सामाजिक उपादेयता के विषय में व्याख्याता कहता है—

“यह सर्वथा साथ जानो कि, जब विवेक, रोष, विनय और धर्म (धर्मात्ताम, दाम, दह, भद्र और नीति के सभी प्रयोग) इत्यादि सभी साधन निष्फल प्रमाणित हो जायें, उस समय उपहास किसी आवाधारिणी राजमत्ता क अनुक कठोर नियम को दमन करने में सफल हो सकता है, अथवा अनुक प्रेमी को अपनी अनधिकार चेष्टा-पूर्वक किसी प्रेयसी को अभिहित करने में रोक सकता है ।”

अनुकरण की उपादेयता का दृष्टांत

यह तो हुआ उपहास-साधन का प्रहृष्ट बल और उसकी उपादेयता । दृष्टांत रूप में मोटे तौर से हम एक प्रसिद्ध पारंपार्य कहानी का यहाँ उल्लेख करेंगे । सुनते हैं कि अमेरिका के एक धनी प्रतिष्ठित पुरुष की एक सयाना खदकी को बाणपाशपा से एक बुरी जान पड़ गई थी । अब-तब यह अपने बंधों को बुरी तरह से मिकोड़कर अपनी विपुल को बड़ी भरा तरह से खाने बसाता हुई भयंकर और बाभाल रूप प्रदर्शित करता हुई देखी जाती थी । समाज में इसकी बड़ी खर्चा था । खदकी अतार सुंदरी होने पर भी अपनी इन अवभाव-विह्वल के कारण बुरा समझी जाने लगी । उसका विना हथ अपवश के कारण अर्थात् दुःखित था । एक दिन अपने विद्वान् दृष्ट-मित्रों से सलाह कर उसने एक विचित्र आशकारी तैयार करवाई, जिसमें अपने दूर-दूर देशों से संग्रहाकर बड़ी-बड़ी भण्डार्य और विह्वल-रूप काकारवादी मूर्तियों और अम्बाय हतिर्वा संग्रही । अब वह खदकी अब-अब इस आशकारी के साथ जाती और उसमें रकी हुई

भयंकर चीज़ों को देखनी, तो बहुत भयभीत होनी।
 हुए विमान दर्श में उन चीज़ों को और ग्राह्य ही
 आहूति को प्रतिफलित देखनी, तब तो वह बहुत दृग्-
 मी हाना। परियाम वह हुआ कि ममपोतर में चोरे-चो-
 की वह पूरी जान छूट गई, और भविष्य में वह समाज
 पात्र बना।

इस दृष्टि से अनुकरण-आलोचना का हृदय प्रिय
 है। वास्तव में सबसे अनुकरण-काव्य के यही लक्षण
 यही उपादेयता है।

अनुकरण-काव्य की समीक्षा
 अनुकरण-काव्य की सामा निर्धारित करते हुए अंगरेज़-री-
 बहुत सोच-विचार और प्रयोगों (Experiments) के
 कुछ नियमों का यत्र-तत्र उल्लंघन किया है, जिनका अम-नि-
 निर्देश कर देना हम यहाँ आवश्यक समझते हैं।

महामना सर किन्नर कृष्ण का कथन है कि अनुकरणक
 सदा अपने अनुकरणीय मूल-लेखक के प्रति प्रेम और भ-
 भाव रखने चाहिए। इस कथन से यह स्पष्ट प्रकट होता
 अनुकरण-काव्य का कर्तव्य केवल कुतिलत साहित्य के लेखक
 जसाह का दमन करना ही नहीं है, बल्कि अच्छे साहित्य के लेख-
 को विरुद्ध करना तथा उनके प्रति लोगों की भ्रष्टा बढ़ाना भी
 वे कहते हैं—

“Admiration and laughter are the ver-
 essence of the act or art of Parody. Parody
 is concerned with poetry—preferably great
 poetry. It is playing with Gods.”

“अर्थात् प्रशंसा और हास्य, ये दोनों व्यापार अनुकरण-कला

के निष्कर्ष सिद्धांत है। अनुकरण काव्य का घनिष्ठ संबंध सदा से काव्य-महाकाव्य के साथ रहना आया है। यह व्यापार देवताओं के साथ आँखा करने के बराबर है।”

अनुकरणाधिकृत विषयों के संबंध में यही कहा गया है कि धार्मिक काव्यों भयवा हृदय के गंभीर मार्मिक भावों (Sentiments) का अनुकरण करना सर्वथा अनुपयुक्त है। इष्टांततः चॅंगरेज़ी-साहित्य में जॉर्डेन टैनिसन की अंतिम कविता “Crossing the Bar” को अनुकरणांतर्गत विषयों से बाहर गिनाया है। इसी प्रकार हमारी समझ में; काज़िदास के श्रुवश और कुमारसंभव, जगन्नाथ पंडितराज की गंगाजहरी, रवींद्र की गीतांजलि और साचना, तुलसीदासजी की रामायण, सूरदासजी के प्रेमपामर और आधुनिक हिंदी कवियों में ‘हरिऔध’जी के श्रियप्रयासांतर्गत गंभीर मार्मिक और धर्म-विषयक भावों का उपहासात्मक अनुकरण करना सर्वथा अनुपयुक्त और मृथा है।

आदर्श अनुकरणकर्ता

अब परन यह होता है कि ऐसे पवित्र और आदर्श साहित्यांग को परिपूरित करने का अधिकारी जेसक कौन हो सकता है ? स्वाभाविकतः उत्तर यही है कि वही जिसके हृदय में साहित्य-सेवा की सच्ची, स्वर्गीय दृढ़ धारणा विद्यमान है; जो मूल-कंछक के काव्य से पूर्णतया अवगत है और जिसे साहित्य के सच्चे दिताहित का ज्ञान है। वही अनुकरण-काव्य की कला को जान सकता है। वही विवेचन कर सकता है कि कौन-से कवि की रचना का प्रशंसा गर्भित अनुकरण करके उसकी कथाति प्रसारित करनी चाहिए और कौन-से का दमन।

अनुकरण-काव्य के प्रकार, भेद

चॅंगरेज़ी में अनुकरण-काव्य के तीन अंग माने गए हैं। यथा—

(१) शब्दानुकरण-प्रधान काव्य, (२) भावानुकरण-प्रधान काव्य और (३) शैल्यानुकरण-प्रधान काव्य ।

शब्दानुकरण काव्य (Verbal Parody)

शब्दानुकरण-प्रधान काव्य (Verbal Parody) वह है जिसमें किसी प्रतिष्ठित कवि की सुप्रतिष्ठित कविता के आधार को लेकर जहाँ-तहाँ थोड़े-से शब्द हम ढग से बदल दिए जायें कि मूल को सर्वथा नष्ट-भष्ट न करते हुए भी उससे अन्वर्थ प्रतिपादित कर हास्य-रस का उत्पादन कर दिया जाय । यह भेद अति सरल-साध्य और साधारण है । यथा—अँगरेज़-कवि पोप का एक छंद और उसका शब्दानुकरण—

“Here shall the Spring her earliest *Surets* bestow,
Here the first *roses* of the year shall blow.”

(Pope)

तथा—

“Here shall the Spring her earliest Coughs bestow,
Here the first *coughs* of the year shall blow.”

दूसरा उदाहरण है महाकवि बट्सवर्थ की सर्वप्रसिद्ध कविता—

यथा—

मीलिक—

“My heart leaps up when I behold

A rainbow in the sky,

No was it when my youth began;

No is it now I am a man,

So be it when I shall grow old or let me die.”

इतिहासगया में—

My heart leaps up when I behold

A *mince-pie* on the table,

No is it when my youth began ;

So is it now I am a man;

So be it when I shall grow old, if I am able."

उपरोक्त शब्दपरिवर्तन में विशेषता यह है कि महाकवि वर्तमान की उद्धृत कविता की नहीं, बरन् उनके सिद्धांतों की हूसी उड़ाई गई है। देखिए, केवल दो ही शब्दों के परिवर्तन से हास्य-रस की उत्पत्ति किस विचित्र ढंग से की गई है। अनुकरणकर्ता ने पोप महाराज की पोपजीका की पोख खोख दो है। यदि वे सच्चे कवि होते (जिसमें कि शक शंका की जाती है) तो उनकी ये दो पंक्तियाँ इतनी रसविहिन और जड़ न होतीं। तभी तो अनुकरणकर्ता ने परिवर्तन के द्वारा वसंत की जगह शरद ऋतु का आरोपण करके कवि के अकवि हृदय की हूँसा उड़ाई है। वास्तव में ऐसी ही कविता की अनुकरणाजोचना होनी चाहिए। ये ही अनुकरण के उपयुक्त विषय हैं। अब यदि कोई अज्ञानवश अनधिकार-चेष्टा करे और महाकवि वाशमीकि की इन मार्मिक भाव्यग्रणापूर्ण दो आदि काम्य-पंक्तियों का अनुकरण कर बैठे, तो ऐसा होना असंभव है—

मां निपाद प्रतिष्ठान्त्यमगमः सास्वती समा ;

यत्कौञ्च मिथुनोदकं श्वधीः काममोहितम् ।

उपरोक्त दो प्रकार के भिन्न-भिन्न काम्यों का परिशीलन कर पाठकों की यह शक्त हो गया होता कि अनुकरण-काम्य की सीमा के अंतर्गत कौन-कौन-से विषय होने हैं और कौन-कौन नहीं।

महाकवि वर्तमान के बहुत-से नूतन प्रतिपादित काम्य-सिद्धांतों में एक आशोचनकारी सिद्धांत यह भी था कि वे कविता और गद्य की शब्द-रचना में कोई भेद नहीं मानते थे, और संभीर-सेनांभीर, सूक्ष्म से भी सूक्ष्म काम्य-प्रतिभा को प्रकट करने के लिये सामान्य-से-साधारण जनता की बोल-चाल की सरल भाषा के प्रयोग करने के पक्ष में थे। उनके ये विचार उस समय के आलोचकों को विचकुक

जाता है । अनुकरणकर्ता ने उन परम पवित्र, स्पर्शनिषिद्ध, देव-मुख्य भावों को विकृत और विचित्र कर, कैसी अनधिकार चेष्टा की है और परिणामतः कैसी भद्दी असफलता प्राप्त की है, यह बात पाठक स्वयं जान गए होंगे । जैसा कि हम ऊपर 'परिहास' शब्द की व्याख्या में कह आए हैं—Truth will prevail over it अर्थात् सत्य की उनके (भूटे परिहास के) विरुद्ध सदा विजय होगी—उसका यह कैसा अशुद्ध उदाहरण है ।

इसी प्रकार अन्यत्र प्रसिद्ध पारनाय कवियों का भी अनुकरण किया जा चुका है । टैनीसन की प्रसिद्ध कविता "The Brook" का अनुकरण कार्लरजो ने बड़े रोचक ढंग से किया है । पाठक वर्ग अपने मनोरंजनार्थ ऑक्सफोर्ड संग्रह में प्रकाशित The Century of Parody पुस्तक को देखें ।

भावानुकरण-प्रधान काव्य

दूसरा प्रकार है भावानुकरण-प्रधान काव्य (Sense-Rendering Parody) यह भेद उत्पत्तर काटि का है और कष्टतर साम्य है । किसी सुप्रसिद्ध कवि अथवा गद्य लेखक का भावानुकरण करना उसी विद्वान् अनुकरणकर्ता के लिये सुसाध्य हो सकता है, जो स्वयं भद्दा कवि अथवा गद्यलेखक है, और जो मूर्खकवि के साथ इतना घनिष्ठ संबन्ध रखने लग गया है कि उसकी आत्मा के साथ तादात्म्य प्राप्त कर लिया है । सभी तो यह मूर्खकवि के भावों की अर्थात् उसकी आत्मा के विकारों की नक़ल कर सकता है, अन्यथा वह इस शुभ कार्य का अधिकारी हो नहीं हो सकता । हम यहाँ पर कुछ उदाहरण देकर यह बता देंगे कि यह दुःसाध्य कार्य किस प्रकार संभावित होता है ।

आधुनिक समय के अनुकरण-कवि हिल्टन (Hilton), और स्टीफंस (Stephens) को इस प्रकार का अनुकरण करने में

दुमरों की अपेक्षा कृपादा सफलता प्राप्त हुई है। डिस्टन ने काव्य के एक छोटे चैंगरेजो-कवि स्विनबर्न के काव्यमय स्वच्छिन्न उनकी समग्र काव्य-प्रतिभा का यों रोचक अनुकरण किया है—

"Ah ! thy red lip, lascivious and lascivious
With death in their amorous kiss !
Cling round us and clasp us and crush us
With bitings of agonised bliss ;
We are sick with poison of Pleasure
Dispense us the potion of pain
Ope thy month to the utmost measure
And bite us again."

हमे कहते हैं सच्चा और मार्मिक भावानुकरण। पद्यों का पूर्व भाग पढ़ते-पढ़ते यह विरवास हृदय पर हृदय जमने लगता है कि केवल स्विनबर्न ही—केवल "Atlanta in Calydon" काव्य के रचयिता ही यह रचना कर सके थे। वही उनका स्वाभाविक श्रोत्र, वही सुयाण्य पद-कालिय और भाव विज्ञास, वही उनको अप्रतिहत भाव-शक्ति (force of Sentiment) और वही उनका अनिर्वचनीय, रस-मय मरक संगीत-प्रवाह; वही रति-मूचक शृंगार रस जो उन्हें सर्व-प्रिय था और वही अनुपास और रत्नेशदि शब्दादबर्तों का विविध समारकार—वास्तव में हृषहू उनकी आत्मा की सारी मज्जा (True Copy) है। यदि अब भी किसी को श्रम हो, तो उनके बहुत-से ग्रंथों को पढ़कर देखे। चाहे, भेद अंतिम दो पंक्तियों में सुझ ही जाता है। वहाँ तक पहुँचकर अनुकरणकर्ता अपने कठिनता से रोके हुए हाथ को अट्टहास में प्रकट कर देता है। "स्वाप्रचर्म-प्रति-बन्धो बाधते रामभो इतः" वाली बात होती है। यहाँ यह भी ध्यान में रखना आवश्यक है कि उद्धृत अनुकरण स्विनबर्न कवि के किसी विशेष छंद अथवा छंद-समूह का नहीं है, बल्कि उनकी समग्र

काव्यारम्भ का है। ऑगरेज़ी-साहित्य में यह सर्वश्रेष्ठ भावमूलक अनुकरण कविताओं की कोटि में गिनाया जाता है। दूसरे अनुकरणकर्ता, जिन्होंने इस क्षेत्र में बहुत प्रतिष्ठा प्राप्त की है, है स्टीफंस। उन्होंने अपनी Poetic Lament on the insufficiency of Steam Locomotive in the Lake district में, महाकवि वर्डस्वर्थ की शैली, पद-रचना, भाषा-मरलता और विषय-सरलता इत्यादि की दृष्टि में, हूबहू नक़ल कर दी है। इस अनुकरण के विषय में आधुनिक आलोचक सिरामण्डि सर आरथर किन्नर कूब ने एक बार कहा था "Perfection of Parody" अर्थात् यह अनुकरण-काव्य की श्रेष्ठता की चरमसीमा है।

जिस प्रकार पद्य-काव्यों का रोचक आलोचनात्मक अनुकरण किया जाता है, उसी प्रकार गद्य-साहित्य का भी किया जा सकता है और किया जाता है। वर्तमान युग के प्रायः सभी बड़े-बड़े ख्यातनाम लेखकों का अनुकरण हो चुका है। मैरीशिय, हारडी, मैटरलिक, चैम्बरलन, बर्नार्ड शा, विल्लियम; चटकर भीड़स तथा ओरबींद्रनाथ टागोर—इन सभी महोदयों ने अनुकरण द्वारा विरज-विख्याति प्राप्त की है।

शैल्यानुकरण-काव्य

तीसरा प्रकार है शैल्यानुकरण-प्रधान काव्य (Style Parody)। यों तो यह उपभेद दूसरे प्रकार के व्यापक-स्वरूप के अंतर्गत आ ही जाता है, परंतु तो भी पृथक् रूप में प्रसिद्ध-प्रसिद्ध गद्य-पद्य-लेखकों की शैली का अनुकरण किए जाते देखा गया है। अतएव विस्तृत व्याख्या की आवश्यकता न समझकर हम केवल इस प्रभेद के प्रमुख और सुविशाल अनुकरणकर्ता तथा उनकी कई एक प्रसिद्ध रचनाओं का उल्लेख-मात्र कर देना पर्याप्त समझते हैं।

ऑगरेज़ी-साहित्य के प्रसिद्ध इनिडाय-लेखक, कवि तथा गद्य-लेखक रैड्क्लिफ महोदय ने प्रोफेसराइट संघ के नेता कवि जी० जी० राजेटी.

महोदय का अनुकरण किया है, जो अत्यंत रोचक है। जान कि
 "Splendid Shilling" में महाकवि मिगटन की शैली का
 मनोहर अनुकरण किया है। इसी प्रकार, स्टीफंस, सर थावन सी
 और काव्जरजी महोदयों ने पृथक्-पृथक् कवियों और लेखकों
 रोचक आलोचना करते हुए अनुकरण काव्य रचे हैं, जिनका
 अँगरेज़ी-साहित्य में अच्चा मान है। थॉमैसवीरमीस महाशय ने
 जो आधुनिक समय के अँगरेज़ी-निबंध-लेखकों (Essayists) में
 अग्रगण्य है, तो इस ओर यहाँ तक विशेषता दिखलाई कि स्वचित्त
 "Christmas Garlands"-नामक पुस्तक में अपने समकालीन
 "Christmas" पर १६ रोचक निबंध लिखाए हैं। और उन सब
 पृथक्-पृथक् शैलियों के लिखनेवाले स्वयं थॉमैसवीरमीस हैं।
 इसी से प्रमाणित होता है कि थॉमैसवीरमीस ने कहाँ तक इन
 सोलह लेखकों की शैली को अपने आप का शक्ति पैदा कर ली होगी।
 यह बात किसी जादूगर के खेत में कम विस्मयोपादक नहीं है।
 इसी प्रकार के उच्च काटि के, शिष्टापद और निष्ठाप, मानव-मरितक
 शक्तियों का विकास करनेवाले आमोद प्रमोदों में जिन दिन हिंदी-
 पठित जनता रुचि और गति प्रदर्शित करने लगेगी, उस दिन से
 साहित्य की सर्वप्रियता और सामाजिक उपयोगिता अवश्य बढ़ जायगी
 और साहित्य तथा जीवन के बीच में पड़ा हुई पारस्परिक दूरासीनता
 की वह भयंकर दरार लुप्त हो जायगी कि जिसमें गिरकर आज भी
 हमारा साहित्य दोन हीन दशा में है।

रतिरानी के विषय में दो बातें
 पाठको, यह 'रतिरानी' एक भावानुकरण प्रधान हास्य-मूत्रक अनु-
 ण्य काव्य (Parody) है। अर्थात् प्रातःस्मरणीय महाकवि बिहारी-
 लाल की कविता के अर्थात् अनुकरणकर्ता, उत्तरकाव्यकर्ता दोहाकार

कवियों की कविता हो हमका आधार है। महाकवि की भावना को प्रकट करने के लिये ही हमने यह प्रयास किया है और उनके अर्थ किया हुआ यह प्रयास हम उनके ही आचरणों में अर्पित करना अपनी प्रथम धर्म समझते हैं। इस यह पहले से ही मानने को तैयार हैं कि कवियों की शैली, पदावली और भाव-सौष्टव का अनुकरण करने में हमने बहुत कुछ श्रुष्टियों की होंगी, परंतु हम और यह प्रथम प्रयास है। बहुत-से अन्य आनुलेखक इस छंद प्रयास को देखकर उत्साहित होंगे। श्रुष्टि को पूर्ण करना बचका काम है। दांढ़ों के साथ टीकाकारों को मिलते हुए भी लेखकों ने प्रत्येक एक हिंदी-साहित्य की एक प्रचलित प्रगति को ध्यान में रखा है। प्रत्येक टीका में लेखकों ने उन हमारे रैंगिले टीकाकारों की विचित्र शैली, अनुभाव, श्लेष और अतिशयोक्तिपूर्ण भाषा, और असंगत बातों के समावेश से परिपूरित, अति विस्तारपूर्ण, संग को तरंग में किसी जानेवाला व्याख्या—मतवाजी व्याख्या—का अनुकरण किया है। हमारा तो यह मत है कि विहारोज्ञ ने दोहे-जैसे छोटे छंद रूपी "गागर में सागर" भरकर साहित्य में जितना अहिंसीय समाकर पैदा किया है और अमर, स्थायी यश प्राप्त किया है, उतना ही अवश्य, अपनी भरी और बेतुकी, असंगत और अति-विस्तृत व्याख्या मिलकर, उस गागर के सागर को उकींच डालने का कृपा प्रयास कर इन मनमौजी मतवाले टीकाकारों ने क्या किया है और अपने आप अपनी हँसी कराकर अपने भाव में कलंक का टीका लगाया है। उसमें कहीं इरादा अवश्य उन महानाज दोहाकार कवियों ने क्या किया है, जिन्होंने विहार-जैसी अननुकरणीय प्रतिभा का अनुकरण कर और दोहे-जैसे छोटे छंद ("देसत में छोटे लगे पाव करें गंभीर" ऐसे, "सतसैया के दोहरे अ्यों नाचक के लोर") का बनाता अत्यंत सरलसाध्य समझकर अपनी शिथिल, असंबद्ध

अरुचिकर, नीरस, असंगत और फोकी काव्य-शक्ति का परिचय दिये हैं। इन प्रकार के नक़्कालों से विहारी को सुरक्षित रखना प्रकृत प्रकाश का मुख्य ध्येय है। ऐसा करने में हमारा हंगित कि-नी व्याक्ति-विटीकाकार अथवा दोहाकार कवि के प्रति नहीं है, और न हम के विहारी के टीकाकारों की प्रशंसा की आलोचना करने को ही उद्दिष्ट है। प० पद्मसिंह शर्मा एवं 'रत्नाकर' को हम विहारी के आदर्श टीकाकार मानते हैं, परंतु उनकी विराद बुद्धि, गाम्भीर्य और वांछित पूर्ण व्याख्या की नज़र कर दूसरे पद्मसिंह और 'रत्नाकर' करवाने का दौंग रचनेवाले मनमौजी और निररर टीकाकारों को हँसना और सुधारना हमारा अधिकार और धर्म है। वास्तव में टीका का यह कुत्सित रूप विहारी के दार्द, तीन दर्जन टीकाकारों में इन कृपादा प्रकट नहीं हुआ है, जितना कि अन्यान्य कवियों की टीका में विशेषतः उर्दू-कवियों के काव्यों की आधुनिक दग की 'षट्पटी मसालेदार' टीकाओं में। अतएव साधारणतः यह अनुकरण सभी प्रकार की असंगत (Irrelevant), बेनुकी (Far-fetched), अतिविस्तृत (Prolix) और मनमौजी टीकाओं अथवा व्याख्याओं का है। व्यक्तिगत आशेष करना असम्यता और अविनय के पराकाष्ठा होती है और ऐसे आशेषों को साहित्य में स्थान नहीं दिया जाता। अतएव हमें पूर्ण आशा है कि सहृदय पाठक हम कुछ रचना में व्यक्तिगत आशेष बँटने का स्वर्थ प्रयास न करेंगे। खेसकों के केवल हिंदी-साहित्य की साधारण प्रतियों (General tendencies) को स्थान में रखकर अनुकरण किया है।

मरहून-माहायकारों की अनुमति हम ऊपर कट आए हैं कि अनुकरण काव्य एक इतरपरम-प्रधान लोचक आलोचनात्मक काव्य है। यों तो यह काव्य-भेद हमारे पुराने नितिकारों में स्पष्ट रूप में कही गिनाया नहीं है; परंतु इसी प्रकार

रसस्वरूप

रसोद्भेदोदकादखण्डस्वप्रकारादेव विन्मयः ।
 वयान्तरस्पर्शशून्यो ब्रह्मास्वादसहोदरः ।
 लोकोत्तरचमत्कारप्राणैश्चित् प्रमातृभिः ।
 स्वाकारवदभिज्ञत्वेनायमास्वाद्यते रसः ।

अर्थात् अंतरात्मा से प्रकाशित होने के कारण यह रस अखंड है—
 स्वरूप प्रकाशमान है—आनंद और चैतन्यस्वरूप है । रसोद्भेद के
 समय अन्य बाह्य विषय के स्पर्शानुभव से शून्य और ब्रह्मानंद के
 सदृश अनुभववाला है । भौतिक चित्तविकासजन्य चमत्कार ही
 इसके पाण्य है, और इसका अनुभव केवल कई एक प्रतिभासंपन्न रूप
 में होता है । स्वाकारवत् होने के कारण यह रस एक ही बार अनेक
 अनुभव किया जाता है ।

आगे चलकर ज्ञानतादात्म्य के द्वारा साहित्यकार ने इस रस का
 स्वप्रकाशत्व और अखंडत्व भा विद्व किया है ।
 यह तो हुआ रस का स्वरूप-वर्णन । रस भव प्रकार
 होते हैं—

रतिर्हार्मरच शोकरच क्रोधोत्साहौ भयं तथा ।
 जुगुप्सानिस्मयरचेत्थमशौ प्रोक्ता समोऽपि च ।

प्रकृत विषयांतर्गत आप् द्रुप हाम-रस का निरूपण करते हुए
 साहित्यदर्पणकार ने लिखा है—“वागादि वैहृताद्येतो विकासो
 हाम इत्यने” अर्थात् वचनादि विवृति-जन्य चित्त के विकास को
 हाम कहते हैं । “वागादि वैहृतात्” में समो प्रकार के (नोट—अनुक-
 रण भी एक प्रकार की विवृति है) अनुकरण ध्यात है, वया—मह-
 रति = शब्दानुकरण । भावविवृति = भावानुकरण और शीघ्रो-
 पागे चलकर रसों का विशेषण करते हुए रति-...

त, विकास और परिपूर्ण के क्रमशः ये सचय बताता है, जिसका
स्वान प्रयोग कर हम अनुकरण-काव्य (Parody) को हास्य-
भाव एक नूतन काव्योपग प्रमाहित करेंगे—

विहताकारवाग्देहादेः बृहकाद्भवेत् ।

हामो हास्यस्याभिभावः रवेणः प्रमर्षदेवता ।

विहताकारवाग्देहा यदासीत्यय इमेजनः ।

तदत्रान्मर्षेण प्राहुः संघट्टाहोपनं मतम् ।

अनुभावेऽप्रियमद्वीकवदनमिरतादकः ।

निशालरवागद्विभाषा अत्र सुधर्मिकारिणः ।

पौन विहृत (१) आकार, (२) बाधा, (३) घेरा आर
) घेरा, इनके लक्षण अधीन अनुकरण से (बुद्धिमान्) हास्य-
भाव होता है । (अर्थ और रस दोनों प्रकार के काव्यों तथा
गौरव्य दोनों शैलियों में यह हास्य-रस प्रदर्शित हो सकता
ह दोषाचार का मत है) जिसके अग हम प्रकार प्रतिपादित
गये हैं—

विभाषा हास्य है । विभाषा के दो भेद हैं—आशङ्कन और हरी-
क्रम वस्तु अथवा विहताकारवाग्देहा-अनक भाव को देखकर
उसे के अग में लाररवानुकरण करने की प्रेरणा हो, हम वस्तु
भाव को हम रस का आशङ्कन करते हैं और कार्य रूप हम

विहताकारवाग्देहा के विभाषा प्रथम विवेका—ता० ६० प० ३
११६ ।

विहताकारवाग्देहा के विभाषा वध्य भाष्योः—ता० ६० प० ३
११

विहताकारवाग्देहा के विभाषा वध्य भाष्योः—ता० ६० प० ३
११

चेष्टा को उद्दीपनक कहते हैं। ("चेष्टा" के इस अर्थ के विवेक
दर्शांत यथा—मनु-१-५२" यदा स देवो जागर्नि तदेदं चेष्टने जग
मूर्तिषो का संकोच, वदन अथवा मुख-गंडज पा हँसी के विद्यमान
विकारों (Expressions) को अनुभाव[†] कहते हैं। और नि
श्चात्सय, अवहित्या[‡] इत्यादि व्यापार व्यभिचारी[§] भाव है।

अथ यदि प्रयोगात्मक (Practical application) मू
दृष्टि से देखा जाय, तो "विकृताकारवाग्देशचेष्टादे कुड्कात्" इस वाक्य
में हमारे पूर्व-निर्दिष्ट अनुकरण-काव्य (Parody) के तीनों भेद
ज्यों-१-स्यों विद्यमान हैं। यथा—भाव के 'वेश' अर्थात् शब्द—उसके
विकार-जन्य तादरथानुकरण (कुड्कात्) को हमने शब्दानुभा
प्रधान हास्य-रस-गर्भित काव्य (Verbal Parody) कहा है।
भाव ५ 'आकार' अर्थात् भावार्थ अथवा भाषाशय (Sense)
उसके विकार-जन्य तादरथानुकरण को भावानुकाक-प्रधान
हास्य-रस-गर्भित काव्य (Sense-Rendering Parody)
कहा है।

और भाव के "वाक्" अर्थात् शब्दों उनके विकार-जन्य तादरथ

• उद्दीपनविभावास्ते रसमुद्दीरयन्ति ये—मा० ६० प० ३ १
१६० ।

† उन्मुक्तकण्ठौ स्वे स्वं, बहिर्भावं प्रकाशयन् ।
लाङ्छे यः कार्यक्यः सो अनुभाव काव्यनात्ययो ।

—मा० ६० प० ३ श्लो० १६१

‡ विषय । आतारिक भाव के गोपन व्यापार को अवहित्या कहते हैं।
§ विशेषादाभिमुख्येन, यान्तां व्यभिचारीणां ।

एवाप्यनुगम्यनिर्माणाय श्रियं प्रसार्द्धमाह्वयः ।

—वा० ६० प० ३ श्लो० १६८

अनुकरण को शैल्यानुकरण-प्रधान हास्य-गमित काव्य (Style Parody) कहा है ।

रतिलानी के विषय में शास्त्र-प्रयोग

जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं, प्रकृत पुस्तक रतिलानी एक हास्य-गमित भावानुकरण-प्रधान काव्य है । केवल भाव के आकार का विकृतानुकरण इसमें किया गया है और वह भी दो पृथक् वर्गों से । एक उपहास-मूलक अनुकरण (Ridicule) और दूसरा प्रशंसा-मूलक अनुकरण (Applause) कविवर विहारी के असंख्य अनुकरणकृतियों के भावों के आकार (Sense) का अनुकरण [(अतएव, आंशिक रूप में स्वयं कविवर विहारीकाव्य के भावों का भी, क्योंकि प्रकृति का यह नियम है कि Things which are equal to the same are equal to one another) एकसाधारण (Common) वस्तु से बराबरी का संबंध रखनेवाली सब वस्तुएँ आपस में भी बराबर होती हैं)] विहारी के प्रति अर्द्ध के भाव से प्रेरित होकर, उनकी विस्तृत पराप्रख्याति के हेतु किया गया है । इसी प्रकार विहारी के टीकाकारों का तथा आधुनिक समय के सम्य रंगोले टीकाकारों का अनुकरण, साधारणतः कुत्सिक टीकाकारों के प्रति अविरास और उपहास का भाव रखने हुए किया गया है । ऐसा करते लेखकों ने प्रयोग-रूप में अनुकरण-काव्य की रचना के उपहास-मूलक और प्रशंसामूलक, रोचक, आलोचनात्मक दोनों आदर्शों दिखला देने की चेष्टा की है ।

रतिलानी और रस-विवेचन

अब प्रश्न यह होता है कि रतिलानी के, अंतर्गत अनुकरण के द्वारा हास्यरस का सांगोपांग उत्पादित होना सिद्ध होता है अथवा नहीं ? त्रिविक्रम प्रमाण दे है—

हामरस इस पुस्तक का रथाभिभाव है । "निर्विचाररसके चित्त

भाव प्रथमविक्रिया" यह सब प्रमाणित हो आयगा, जब सहृदय पाठक विहारी के कई एक दोहों को, जो भूमिका के उत्तर-भाग में उद्धृत हैं, रतिलानी के अनुकरण दोहों से मिलाकर पढ़ते हुए विहारी के अनुकरणकर्ता दोहाकारों की रचनाओं का ध्यान करेंगे। अनुकरण-कर्ताओं ही अनधिकारचेष्टाजन्य कृत्तियों ही इस रूप का आलम्बन विभाव है। उनकी अनधिकार चेष्टा के द्वारा हम रूप का उद्दीप्त होता है; उनके काव्यों की संग्रहितियों का कार्यरूप में बहिर्प्रकाशन हो अनुभाव है, तथा उनके काव्यों में जगह-जगह पर जो संभ्रमैकिक विपक्ष-प्रवासिता, कुछ तथा अगोप्य गोपनीय झलकने हैं, वही व्यभिचारी भाव है। और जब सब रसों की वातावरणानुसरण उसी विवृत रूप में प्रथम प्रतिकार विवृत रूप में रतिलानी में जान-बूझकर प्रदर्शित करने की चेष्टा की गई है।

हम विशेष धन्येयणीय बातें पाठकों के तात्पर्येयी हृद्यों में घोड़ते हैं।

अनुकरण और मानव-प्रकृति

जब विलुप्त संस्कृत-साहित्यार्थों में से उद्धृत करके हमारे सहृदय पाठकों के समक्ष हम कई एक उच्च कोटि के सर्वोपरि आदर्श अनुकरण-काव्यरत्न उपस्थित करेंगे। हमें याशा है कि इन रत्नों का मनन करने के उपरान्त सहृदय पाठकों की आस्था अवाञ्छित रूप से क्षीण होगी और वे यह बात निश्चित जान लेंगे कि अनजान में ही नहीं, अप्रकाशित-बूझने हुए ही (हम तो यही कहेंगे कि जान-बूझकर) हमारे पुरातन साहित्य-महापुरुषों और कवि, अनुकरण करनेवाले प्राकृतिक प्रयोगों का कोम संशय न कर सके। यदि उन्होंने अनजान में उच्च कोटि के अनुकरण-काव्य-संग्रह रचे, तब तो हमारा यह कथन कि हास्यसम्पन्न अनुकरण-काव्य एक उच्च कोटि का काव्यप्रभेद

है, तथा अनुकरणवृत्ति का मानव-शरीर और मस्तिष्क के साथ प्राकृतिक बर्मे का संबंध है, (इस विषय में देखो, "*Origin of Species*"—Charles Darwin) और सम्यक्-रूपेण पुष्ट हो जायगा । हम अपने सांसारिक व्यापारों का निरीक्षण करते हुए अनादि काळ से देखते आए हैं कि जिस मानव-शरीर अथवा मस्तिष्क-संबंधी व्यापार को, नियम द्वारा वर्जित अथवा अननुमत होने पर भी, हानि-खाम का कुछ विचार न कर, साधारण मनुष्य-समाज सदा से संपादन करने में प्रवृत्त होता आया है और प्रवृत्त रहेगा; उसे मनुष्य का प्राकृतिक बर्मे (Instinct) कहते हैं । परंतु उसका अतिरोध अथवा मूर्खोन्नेदन करना हानि-खाम-विमर्षक मानव-विचार-शक्ति (Reason) के लिये सर्वथा असंभव है । अनुकरण मानव-समाज का अनादिस्थायी प्राकृतिक गुण है ; अतएव अनुकरण-काव्य भी मानव-प्रतिभा का प्राकृतिक सुरक्षाव्य विभूषण है ।

संस्कृत-साहित्य के इतिहास का परिशीलन करनेवाले प्रत्येक विचारशील व्यक्ति को एक नहीं अनेक अनुकरण-काव्यों के दृष्टांत और इंगित उपलब्ध हो सकते हैं । हम यहाँ केवल दो-एक विशिष्ट काव्यों के नामोल्लेख कर, भूमिका-विस्तार के मय से अपने कथन का उपसंहार करेंगे ।

भोज-प्रबंध

आदर्श अनुकरणकर्ता कविवर श्रीवृद्धाक्षसेन का विरचविख्यात अनुकरण-काव्य-ग्रंथ 'भोज-प्रबंध' हमारे मत्त से केवल संस्कृत-साहित्य के क्षेत्र में ही नहीं, बल्कि संसार के समस्त अनुकरण-काव्यों की भेगी में उत्कृष्ट है । हमें अतिशयोक्ति समझना भूख है । हम सदृश्य पाठकों से पूछते हैं कि यदि यह काव्य आदर्श अनुकरण-काव्य के मय भेरी को स्वरूपेण दृष्टान्तिवित नहीं करता, तो वे ही बतावें कि शास्त्रानुमत काव्य के और कौन-से प्रभेद के अंतर्गत यह पड़ता है ।

हमारा समझ में इसका एक ही उत्तर हो सकता है और वह यह कि भोज-प्रबंध, शास्त्र द्वारा अनुमत, परंतु शास्त्र-ग्रंथों में नानो-द्वेष्ट के अभाव के कारण अस्पष्टानुमत, हास्यप्रधान अनुसरण-काव्य है।

इतिहासकार भोजराज को माझव अर्थात् धार देश का राजा बताते हैं। इनका जीवनकाल मिश्र-मिश्र मतों द्वारा १०वीं शताब्दी के अंत में अथवा ११वीं शताब्दी के प्रारंभ में माना गया है। इनकी राजसभा में भोज-प्रबंध में वर्णित, काब्रिदास, भवभूति, भारवि, माघ, बाण, मयूर इत्यादि, प्रायः सभी संस्कृत-साहित्य के उच्च कोटि के कवि, नाटककार और उपन्यासकारों का समकालीन विद्यमान होना सूचित होता है जो इतिहास की दृष्टि से असंभाव्य बात है। यह बात निश्चित है कि न तो वे सब कवि एकत्र समस्यापी और समकालीन ही थे और न उनकी ये कविताएँ, वे समस्यापूर्तिवाँ अथवा कवियों की सरस्वती के आगे काव्य-परीचावालाँ वे बातें ही सत्य मानी जा सकती हैं।

वास्तव में बात यह थी कि भोजराज कवि भोजराज-नामक किसी इतिहास-प्रसिद्ध काव्यानुसारी माझवदेश के राजा के दरबार में प्रतिभा-संग्रह कवि थे। राजा की अनुमति से अथवा स्वभाव-प्रेरणा से, तथा भोजराज की क्वालि उन्नादन करने के हेतु श्रीराज कवि ने संस्कृत-साहित्य का वह काव्यरस बनाया, जो आज तक काव्या-लोचना के अंग में सुप्रसिद्ध ग्रंथ है। ये तो संस्कृत-साहित्य में और भी कई आलोचनात्मक ग्रंथ हैं, परंतु रोचकता, मनोहारिता और कोमलता की दृष्टि से भोज-प्रबंध ही एक ऐसा ग्रंथ है, जो पद्य-मंत्र, द्विपददेश और कथा-परिभाषा के समान संसार-भर में संस्कृत-साहित्य के समुत्तम विद्वत्-स्वरूप को अनु प्रतिभा के रूप में प्रस्तुति कर सका है। संस्कृत-साहित्य में विलेख गति न रखने वाले हमारे

जाहों भारतीय भाई धोबी-सी प्रारंभिक संस्कृत-शिक्षा के बाद भोज-प्रबंध ही को पढ़कर हमारे भारतीय काव्य-जीवन के निर्माताओं के विषय में कुछ जानकारी प्राप्त करते हैं, तथा उनके गुणों के सारसंग्य का कुछ भाव बाँध सकते हैं। और, इसी भोज-प्रबंध के विषय में हम निश्चय के साथ कह सकते हैं कि यह संस्कृत-कवि-अव्यापनार्थ हास्य-प्रधान, एक अद्वितीय अनुकरण काव्य है। भोज-प्रबंध में अनुकरण-काव्य के तीनों प्रकार के रूप यत्र-तत्र बाँझनीय अवस्था में मिलते हैं। सहृदय पाठक स्वयं पढ़कर देख लें।

यदि अन्वेषण किया जाय, तो और भी अनुकरण रचनाएँ हमारे वृहत् संस्कृत-साहित्यार्णव में मिल सकती हैं, परंतु वे केवल इंगित-मात्र होंगी और उनसे हमको विशेष प्रयोजन भी नहीं है।

पाठकवर्य, ऊपर हम कह आए हैं कि अनुकरण करना यथवा भावापहरण करना कोई बड़ा दोष नहीं है—यदि वह ठंग से किया जाय। हम यह भी मानने को तैयार हैं कि स्वयं विहारी भी अनुकरणशील-प्रकृतिसिद्ध लोभ का संवरण नहीं कर सकते थे और न उन्होंने किया ही। परंतु, जैसा कि हम ऊपर कह आए हैं और फिर भी कहते हैं, भदे अनुकरण और सहज ही में बुरी तरह से चोरी के दोष में पकड़े जा सकनेवाले भावापहरण और अनुकाण के विषय में सब कोई विचारशील पुरुष नाक-भौं तिकोढ़ेंगे। अब देखिए दो भिन्न-भिन्न उदाहरण देकर आपके मनमार्थ यही बात पेश की जाती है—

कबीर के निम्न-लिखित दो दोहों को ही लोत्रिए—

(१) कहा भयो तन बाँहुरे, दूरि बसे जे बास ;

जैना ही अंतर परा, आन तुम्हारे पास ।

(२) यह तत यह तत एक है, एक प्राण दुद गात ;

अग्ने जिय से जानिए, मेरे हिय की बात ।

बताइए, साहित्य का क्या खाम हुआ । एक ही दोहे को घसीटकर मतिराम ने उसकी कीमत ११ से १२ आने कर दी । इससे तो यदि वे एक मौखिक दोहा लिखते, तो उनके भक्त लोग उस १२ आने माछ को भी ११ आने में खरीद लेते । परंतु विहारी की उपेक्षा करके जब उन्होंने एक ही बाज़ार में एक ही चीज़ की सामने-सामने दुकान खगाई, तब तो ऊबड़ खुब गई ।

पाठको, हम विहारी की तुलना में मतिराम को नहीं रखते, न उनके कवित्व के प्रति हमारी अज्ञा ही का अभाव है । हम विहारी को विहारी की जगह और मतिराम को मतिराम की जगह सर्वश्रेष्ठ समझते हैं । कई बातों में हम मतिराम को विहारी से बढ़कर और बहुत-सी बातों में विहारी को मतिराम से बढ़कर समझते हैं । केवल उपयुक्त मति/के म्यामोह के ज़िये हम उनको अवश्य कुछ कह सकते हैं । फिर एक मतिराम हो को उद्धृत करने से हमारा आशय केवल उन्हीं को विहारी के अनुकरणकर्ता भयवा सबसे बड़े अनुकरणकर्ता मान लेने का नहीं है । हमने केवल उदाहरण-मात्र के ज़िये मतिराम का दोहा उसी प्रकार ले लिया है, जिस प्रकार १०० मन धान में से सुट्टी-भर चावल । सत्य तो यह है कि विहारी के उत्तरकाव्यवर्ती प्रायः सभी दोहाकार कवियों ने विहारी के दोहों का अनुकरण कर उनकी-सी उलझल व्यति खाम करने की चेष्टा की । आज तक यह अनुकरण का प्रवाद अनवरत प्रकाश जा रहा है । यहाँ तक कि ये अनुकरणकर्ता दोहा-कवि आजकल तो बरसाती मेढकों की तरह जिधर देखो उधर ही टर-टर करते सुनाई देते हैं । उनकी विरक्ति के हेतु और विहारी की स्तुति और प्रशंसा के हेतु यह प्रपत्ति है । यही इस अनुकरण-काम्य का मंतव्य है । उदाहरण के ज़िये तथा मनोरंजनार्थ हम नीचे कई एक मतिरामों के दोहे विहारी के दोहों के निष्कट रखकर अपना अपहास्य मंतव्य प्रकट कर देते हैं ।

(१)
विहारी—हेरि हिजोरैं गगन तैं परीपरी सी दृष्टि
धरी धाड़ पिय बीच ही, कुरी खरी रस लूटि
रतिरानी—सावन में भूलो परो, सखि संग तिय मुलराय
धाय बीच प्रकटे पिया, 'मरी' कहत लपटाय ।

(२)
विहारी—कुच गिरि चढ़ि, अति धकित है, चली डीठि मुँदचाह ।
फिरि न टरी, परिवै रही, गिरी विपुल की गाढ़ ।
रतिरानी—कुच पर्वत छाबि छकत हो, परयो पेट के गाढ़
वामे मो मन कीसि रखो, सकत न कोऊ काढ़

(३)
विहारी—खेलन सिखए आलि भलैं, चतुर अहेरी। मार ।
काननधारी नैन-मृग, नागर नरनु शिकार ।
रतिरानी—हर गहि बान कमान, नैना कानन आत है,
हैमे बचि है भान, मृग बनि मारत मृगन को ।

(४)
विहारी—सहस्र सचिकन स्यामदधि, मुचि मुगय मुकुमार ।
गननु न मनु पधु अपधु लसि, विपुले सुपरे बार ।
रतिरानी—कारे गटकारे चिकन, मीन सुछोमल बाल ।
रेशम-रगरी-जाल मनु, मन-खग पौसन लाल ।

(५)
विहारी—ज्यों-ज्यों जोवन-अट दिन, कुच मिति अति अथिछति ।
ज्यों-ज्यों दिन-दिन कटि-दण्ड, छीन परति निग जाति ।
रतिरानी—कुच कपोल कह बदन लालि, बड़े निनैव कुच नैन ।
कटी छीन मड बाग है, नैनहि माही नैन ।

(४७)

(६)

विहारी—लाज गहौ बेकाज कत, घेरि रहें घर जोहि ;

गोरसु चाहत फिरत हौ, गोरसु चाहत नौहि ।

रतिरानी—हरी हरन में चतुर हैं, हरे सवन की पीर ;

माखन हरि गोरस हरत, हरत मान हरि चीर ।

(७)

विहारी—बिनती रति विपरीत की, करी परसि भिय पाइ ;

हंसि अलबोलैं हां दियो, कतह दियो बताइ ।

रतिरानी—एक दिन पिय ने कही, करन केलि विपरीत ;

नतमुख हो विहँसी दिया, नयनन में भय प्रीत ।

इस रति विस्तृत भूमिका का उपसंहार करते हुए और सहृदय पाठकों से समा-धार्यता करते हुए हम आशा करते हैं कि वे हमारे आशय पर और इस विनय पर कि

आपहि को अपराध , न्यायालय में आपके ;

पुरवहु भोरी साध , सचो सचनो न्याय करि ।

पूर्णरूपेण ध्यान देकर हमारे प्रयास पर श्रृंखलित होकर हँसेंगे । वस्तु उसी हँसी के सतरंगरंजित पुष्प-प्रकाश में यदि विहारीलाज उनके और हमारे विशुद्ध हृदयास्त्रों पर का विराजें, सब लो उनकी यह कामना और हमारी और सहृदय पाठकों की यह मनोभिच्छाय पूर्ण हो जाय—

सौख मुकुट कटि कादनी , कर मुरली उर मान ;

यहि बानक मो मन बसौ , सदा विहारिलास ।

विषय-सूची

चोर	...	१	चतुर चकोर	...	४६
चोर मुजो	...	३	मोहिनी मधुखिषों	...	५१
नंददायी मधुख	...	५	बड़ा व्यापारी	...	५४
मंदकिनी	...	७	सम्मान के साधन	...	५६
नद	...	८	प्रेम-प्रकाश	...	५८
नी और मरखी	...	१०	शिकारी की शिकायत	...	६०
म-रसरी	...	१३	स्वर्ग का सुख	...	६३
विहार	...	१५	सुख के मददगार	...	६५
ब-कल्पना	...	१७	काम के कमल	...	६४
की भीर	...	१८	प्रेम-प्रहरी	...	६६
का भागार	...	२१	विचित्र वैद्य	...	६८
की केसर	...	२३	सुग्ध मधुप	...	६९
की सझा	...	२५	सुकु सुक्ता	...	७१
नगर के राजद्वार	...	२७	प्रेम-पय-पान	...	७३
को काम	...	३१	बहुरंगी विहारी	...	७५
की भाषा	...	३३	सुध सीप	...	७७
की	...	३६	रसना के रस	...	७८
की चाह	...	३८	सच्चा संदेह	...	८१
का प्रभाव	...	४०	हँदु की हँव्याँ	...	८३
से चिड़	...	४३	कोप का कारण	...	८५
का	...	४५	मर्यादों की मान-हानि	...	८८
की कसौटी	...	४७	नम का नीलम	...	९०

सुंदर सुमन	...	६२	मरकट का मोड़	...
जट की खपेट	...	६३	धुवि की बुद्धाम	...
प्रेम की प्रवाणता	...	६६	अजीब ओषधि	...
मदन का मोड़	...	६८	आत्म-आसक्ति	...
प्रेम-पयस्विनी	...	१००	प्रेम का प्रतिबिम्ब	...
आधयहीन के आधार	...	१०२	मान-मोचन	...
प्रेम-पयोधर	...	१०४	कलानाथ का कर्जक	...
काजिंदी में कनक-कलश	...	१०६	वाम विधु	...
नयन-नैया	...	१०७	मान-मर्दन	...
प्रेम-दान-पत्र	...	११०	वृत्तियों की दुष्टता	...
कामिनी का रूप	...	११२	अपानक आगमन	...
धुवि-धुक्	...	११४	पुत्र-प्रेम	...
अगम अर्थात्	...	११७	दर्द की दवा	...
कलई किया कौंच	...	११८	प्रेमरगां प्यारी	...
सत्य सैनिक	...	१२१	सरोज पर शक्ति	...
पक्षोत्तियों का प्रमाद...	...	१२४	अजवंती अता	...
हंसों की हँसी	...	१२६	पीपल का पात	...
बढ़ों की बढ़ाई	...	१२८	चार चंद्रिका	...
अनोखा अरवि	...	१३०	भारी भ्रम	...
प्रेम का प्रतिहार	...	१३२	रनेह-रंका-सम्मिष्टन	...
मित्र-मिष्टन	...	१३४	कर्तव्य-कर्तव्य	...
महामुनि मय	...	१३६	विचित्र सरोजिनी	...
अजन की आजी	...	१३८	नेह में नीति	...
नि में रंग	...	१४०	प्रेम की प्रकृता	...
नि की कमान	...	१४२	ओषध की दृष्ट	...
प्रेम का अर्थ	...	१४४	बिरही बिधु	...

विष्णु-विहीन वादक	२०७	वादकों की बदाबदी...	२२८
वेद-वेदना	२०६	सखी का स्नेह	२३१
गङ्गा का गुप्तचर	२११	मृत्ते की ममक	२३३
गुरु-सरिता	२१२	प्रेम-प्रसवेद	२३६
हृरूपिया विष्णु	२१४	वादक में विश्रुती	२३८
गोखमिचीनी का आनन्द	२१६	संसार का सार	२४०
म-प्रतीका	२१६	सौंदर्य की शक्ति	२४२
म-पत्र	२१७	अयोतिस्वरूप की अयोति	२४४
र की मार	२२०	नेह का न्यायालय	२४६
रतन का मोह	२२२	विधि का विशासन	२४८
मिनी-दमक	२२४	प्रेम-प्रताप	२५०
न पर अप्सरा	२२७	प्रेम-परमेस्वर	२५२

रति-रानी

चतुर चोर

हरी हरन में चतुर हैं, हरि सचन की पीर ;

माखन हरि गोरस हरत, हरत मान हरि चर ।

अजबिहारी बड़े चाँके बटमार हैं । चोरी करने में भी वह बड़े चतुर हैं । वह चोरी तो करते हैं एक वस्तु की; परंतु पीछे लिच आती है एकआध और ही चीज ! वह हरन तो करते हैं माखन का; परंतु गोरस अपने-आप चला आता है । हमें आश्चर्य तो यह है कि माखन-बाखन के परचात् उन्हें गोरस की लौ क्यों लगी रहती है ? मालूम होता है, यहाँ गोरस का कुछ अर्थ ही और है । कवि के इस श्लेष का अर्थ प्रवीण पाठक स्वयं ही समझ लें । यदि गोपाल पहले ही गोपियों के गोरस का हरन कर लेते होंगे, तो उन्हें माखन तो मुक्त ही मिल जाता होगा ।

अप जरा एक और चोरी की पासनी प्रतिष्ठ । जल-विहार करती हुई मानिनी गोपियों के बख्र घुराकर ही हमारे हरी बनस मान हर लेते हैं । मान को पानी के प्रवाह के साथ बहा-कर वे हमारे बिहारीलाल से, बख्र वापस लौटा देने की,

विनय करने लगती हैं। परंतु कृष्ण केवल इसे ही पर्याप्त नहीं समझते। वह उनको अपने पास नग्न घुसाकर उनके मांस को पूर्णतया पूर्ण कर देते हैं, जिससे वे आगे रेंगलाकर चले। अथवा यों कहिए कि वह राधाजी का गान हरकर उनका चोर भी करने लग जाते हैं, ऐसे वह 'चतुर चोर' समस्त संसार के दुःखों की चोरी करें।



मधुर मुरली

पानी भटा देखन रसिक, गयो जमुन जल पार ;

राधातारन तान करि, दियो सबहि जग तार ।

सावन का सुहावना समय है । एक साथ हजारों तोंपों की आवाज के समान गहरी गर्जना हो रही है । मालूम होता है, इंद्रदेव अपनी भार्या भूमि से चिरकाल के बाद मिलने आए हैं; वन्दों की खुशी में—उनके स्वागतार्थ—यह आनंदोत्सव मनाया जा रहा है । थोड़ी देर में पानी धरसना ही चाहता है ।

इधर तो यह हाल है, और उधर बेचारी विरहिणियों की वेदना का बुझ कारागार नहीं । उनका तो “बदावारी जिय लेत है, ये बहरा बहराह” । परंतु साँवले के लिये तो संयोग-मुख का पूरा-भूरा सामान जुटा है, सिर्फ शर्म ही की शिकायत है । आपने एक तरकीब हँद निकाली । घटा की छटा देखने का नाम लेकर आप यमुना के उस पार गए और मोटे सुर में मुरली बजाने लगे । राधा-तारन, तारनतारन कृष्ण ने यह तान अपनी प्रेयसी राधाजी को यमुना के उस पार, अपने पास, मुलाने के लिये की । आपने कोई सांकेतिक स्वर सुनाया होगा ।

संसार को इस आनंद से वंचित रखकर आप अकेले ही राधाजी के साथ मजा लूटना चाहते थे और इसी लिए 'राधा-तारन' अर्थात् राधाजी को तैराने के लिये तान की ! परंतु नवीया कुछ और ही हुआ । तान को सुनकर राधाजी तो लज्जावश यमुना न तैर सकीं, परंतु समस्त संसार के प्राणी इस भवसागर को—तैर गए—सहज ही में पार कर गए ! धन्य, 'राधा-तारन' ! आप तैराना तो चाहते हैं किसी और को और तैर जाता है कोई और ही । हे माधव ! यह मजा तुम्हारी मधुर मुरली को छोड़कर और कहाँ ?

इस संसार में आकर वही तरा है, जिसने राधावल्लभ की मुरली की तान के रहस्य को समझ लिया, जो उसके सुमधुर संगीत को घोलकर पी गया है, और जो निरिदिन बस वही एक प्रेम-रंग में मग्न रहता है । विहारी ने सत्य कहा है—

तंत्रीनाद कवित-रम, सख्य राग रति रंग ।

अनपूरे पूरे तरे, जे पूरे सब संग ।

आनंददायी अच्युत

गोविन्द के मन हरन करि, भियो अपर मकरंद ;

नव वय सुंदर स्याम वपु, काहि न करत अनंद ।

रसिक-शिरोमणि, सौधले नंदलाल ने तो अपनी लीलाओं द्वारा समस्त भक्त-मंडल को वश में कर रक्खा है । भक्तों ने उनको अपने हृदय में स्थान दिया है; और उनके चरणों से ऐसे लिपट गए हैं कि उनकी दीनता देखकर भक्त-वत्सल भगवान् से उनको छोड़ते नहीं बनता । परंतु, यह न समझिए कि कृष्ण जैसे नीतिज्ञ, सबकी चाल में आकर इसी प्रकार प्रेम-बंदी बन जाते हैं । नहीं-नहीं, यह तो अटल और अनन्य भक्ति ही की शक्ति है कि जिसके वश होकर वे लाचार हो जाते हैं । ऐसी फोटि के भक्तों के लो वे सर्वस्व, जीवन-प्राण हो रहते हैं; भक्तों में वे इस प्रकार मिल जाते हैं कि वे भक्त और भक्त वे हो जाते हैं, परंतु सबको यह अनन्य भक्ति दुर्लभ है । इससे यह न समझ लेना चाहिए कि केवल इसी फोटि के भक्त उनको प्रिय हैं । नहीं, उन्होंने तो “भक्तिमान् मे प्रियो नरः” कहकर स्पष्ट कर दिया है कि भक्त किसी फोटि का क्यों न हो, वे उसको अवश्य अपनाते हैं । हाँ, इतना जरूर है कि जिनकी भक्ति अनन्यता और प्रचलता

में बड़ी-बड़ी है, वे तो उन पर दावे के साथ अधिकार रखते हैं परंतु भगवान् सबके हैं। कोई उनको रासलोका के रमिक रूप में देखकर आनंद पाते हैं, तो कोई उन्हें गोपियों के साथ प्रेम करते देखकर प्रेम करते हैं; कोई उन्हें गोपाल रूप में प्यार करते हैं तो कोई उन्हें दीन-दुख भंजन अर्जुन-सखा रूप में देखना पसंद करते हैं। सारांश यह है कि इन सबको भगवान् आनंददायी हैं।

परंतु इन कविजो की ओर तो देखिए, इन्होंने अपनी बड़े चावल की खिचड़ी अलग ही पकाकर कृष्णजी को चुन करना चाहा है। वे उन्हें और ही रूप में प्यार करते हैं। इनका तो कहना है कि जिन छैला कृष्ण ने गोपियों के मन हरन कर लिए थे, और जिन्होंने उनके अधरामृत का पान किया था, उन्हीं कांतिमान्, किशोर और सुंदर, श्याम शरीरवाले कृष्णकन्हांई को हम अपना प्रेम अर्पित करते हैं। कविजो का कथन सत्य है। मालूम होता है, कवि अधरामृत के थड़े ही शौकीन थे, तभी तो इस रूप में उनके आगे अपना प्रेम प्रकट किया है। परंतु कविजी ने यह गारंटी नहीं दे दी है कि सभी को यह रूप सर्वोत्कृष्ट जेंचे। यहाँ तो जितने रसिक हैं, उतनी ही रुचियाँ हैं। जिहारी उनको 'कर मुरली उर माल' देखना चाहते हैं; कोई-कोई उनको बहुरंगी रूप में, तो कोई 'विरल चरण धरे' रूप में देखना चाहते हैं। धन्य हो गोपाल, आपकी लीला पर सब लहू है।

मुक्त मंदाकिनी

मुह्य भरि तिय माँग हमि, छोड़त बिच कच पास ;

मनु नौलोअलत नम बिये, छलछल गंग-अछाम ।

मोतियों से भरी हुई नायिका की माँग केरा-पास के बीच में इस प्रकार शोभा देती है, मानो नीले और चमकीले आकाश में आकाश-गंगा छलक रही हो ।

ये कवि भी गन्धर्व के लोग होते हैं । ये प्रकृति-देवी के छाड़िले लइकों में से हैं । इनका कुछ ढंग ही निराला है । इनको सुमन में सुररो के दरान होते हैं; ओस में मोती नखर आते हैं; महिला के मुख में मयंक के दरान होते हैं; लटों में नागिन नखर आती हैं; दाँतों में दादिम के दाने दीख पड़ते हैं; कटि में केहरि की कटि दिखलाई पड़ती है; मेंहरी लगे हुए कपड़ों में कलईदार काँच दीख पड़ता है, और मोतियों से भरी हुई माँग में मंदाकिनी मिलती है ।

ये कवि प्रकृति-माता के सच्चे सुपुत्र हैं, इसलिये इन्हें हर जगह ही प्राकृतिक सौंदर्य दीख पड़ता है । मंदाकिनी के समक लो, भाग्य खुल गए—बह तो मुक्त हो गई ! कविजी की छत्रा से उसे ऐसा स्थान मिल गया है कि त्रिसे त्यागने

की शायद ही कभी उसकी सखियत करे; क्योंकि उस नभ ।
 को चंद्र फलंकी है, परंतु नायिका का मुख निष्कलंक चंद्र ।
 जिसकी चारुनी हमेशा झिंझकी रहती है । बेनी-रूपी नागि
 रत्ता के लिये नियत हुई है, जो सदा पहरा देती है । मे
 धांधी का भी यहाँ कर नहीं है । अतः यह सब प्रकार
 यहाँ सुखी है ।

नेह-नद ✓

सिंदूर माँग सैशारि निया, उमधि-उमधि इठलात ;

मलहु नागर नेह-नद, सागर हू न समात ।

सिंदूर से अपनी माँग भरके यह स्त्री इतनी इठला-इठला-कर क्या बलती है, मानो यह दिखाती है कि पति-प्रेम की नदी का प्रवाह समुद्र में भी न समाकर इधर-उधर यह निकला हो ।

माँग में मग द्रव्या सिंदूर ही मानो पति-प्रेम-प्रवाहिनी का यह माग है, जो हृदय-सागर में भी न समाकर यह बला हो । जो पति-प्रेम में पगी हुई हैं अथवा वससे परिचित हैं, वे इस बात की तार्क्य करेंगी कि वास्तव में यह प्रेम-रूपी नदी समुद्र में नहीं समा सकती—समुद्र में ही क्या तीनों लोकों में भी नहीं समा सकती । फिर बेचारी नायिका इठला-इठलाकर चले, तो क्या आश्चर्य है ! नेह-नद में बहुत-से तो यह तक जाते हैं । नेह-नद की भला क्या हद !

मकड़ी और मक्खी

कामिनी केस कलाप, गिर, मकड़ी, को सो जाल ;
मन माझी तैह फंसि रही, कइत न होत बिहाल ।

मकड़ी का जाल तो आपने देखा ही होगा; कैसा सुंदर होता है ! कारीगरी को देखकर तो दिमाग चक्कर खाने लगता है । फिर कभी सूर्य की किरणें पड़ गईं, तब तो ऐसा चमकने लगता है कि देखनेवालों की आँखों में चकाचौंधी आ जाती हैं । जरा दृष्टि स्थिर कर एक-एक सूत पर नजर डालिए और सोचिए कि उनके बुननेवाले को ईश्वर ने क्या इमोटी दी होगी ? स्पर्शाशील जुताइों की लाखों पीढ़ी गुजर गई, परंतु इसकी नकल न हो सकी । आपने सब कुछ देख लिया । अब साथ ही यह जानने को भी उत्सुक होंगे कि इस जाल का उद्देश्य भी कैसा महान् और अद्वितीय है । परंतु, यहाँ आकर, आगको इतारा होना पड़ेगा । देखिए, एक कोने में दुपकी हुई वह चंदौल मकड़ी ही इस सौंदर्य और कारीगरी के नमूने की स्वामिनी है । और, इस जाल के बिछाने का उद्देश्य यह है कि इधर से गुजरनेवाली मोली-भाली मक्खियाँ धोखा देकर फँसती जाएँ । देखा, चिन्ता बड़ा पहाड़ गोदने पर एक छोटा मृगा निरुद्धा ।

"बहुत हीर घुमते थे पदलू में दिल का ;

जो चीरा तो एक बतरण खून निकला ।"

अब भी ध्यान रखिए, किसी मड़कीली चीख को देखकर उसके मोह में मत पड़ जाए !

और सुनिए । कवित्री की प्रतिभा ने भी इस प्रकार की एक कपटमय वस्तु स्त्री के छवि-संसार में ढूँढ़ निकाली है । स्त्रियों के केशपारा मकड़ी के जाल के सदृश ही चमकीले और मड़कीले होते हैं; उन पर पड़ी हुई सूर्य की किरणों की चमक भी धाँसों की सहन-शक्ति से यादर है; उनका भी चरैरथ किसी प्रकार भला नहीं है । विधि ने इस केशपारा को ऐसा सुंदर और नयनानंददायी बनाया है कि जिसने एक बार मन भर-कर इसकी छवि को देख लिया, वह फँस गया, और उसका निकलना मुश्किल हो गया । वहाँ तो मकड़ी के जाल में केवल मक्खी-जैसे झुद्र जंतु ही फँसते हैं; और अगर बड़ा जीव आ पड़े, तो जाल के टूटने की नौबत आती है; परंतु यहाँ तो ऐसा बड़ा भारी जीव फँसता है, जिसकी सामर्थ्य का धौंसा दूर-दूर तक बजता है; चंचलता में, जो हवा से भी बढ़कर है; बल-घान् जो इतना है कि विपत्ति पड़ने पर पहाड़ की तरह अचल रह सकता है; दृढ़प्रतिष्ठ इतना कि एक बार प्रतिज्ञा करने पर करोड़ों बाधाएँ क्यों न आ पड़ें, हिलता तक नहीं; जो सूक्ष्म

इतना है कि ध्यान में भी नहीं आ सकता। परंतु, यह सब होने से क्या हुआ, यहाँ आकर उसकी दाल नहीं गलती। जाह्न से पड़ते ही देवता कूच कर जाते हैं। एक बार इसमें फँस गया फिर क्या है ? जन्म-भर यहाँ चकर लगाता रहता है; बेहोश होता है; परंतु करे क्या ? असहाय है ! निकल नहीं सकता। राजब का मामला है; प्रभु बचावें तो रक्षा हो।

रेशम-रसरी

कोरे छटकोरे चिक्के, मीने मुकोमल बाल ।

रेशम रंगरी बाल मनु, मनसग कोशन लाल ।

यह दोहा सौंदर्य और नचाकत का नमूना है । कविजी कहते हैं कि नायिका के सिर पर काले, लंबे, चिक्के और मीने बालों का यह केशपाश प्रेमियों के मनरूपी पत्नी को फँसाने के लिये रेशम की पतली, कोमल और चिक्की रस्सियों से बना हुआ जाल-सा है ।

आप जानते ही हैं कि घटुतेरे चिड़ीमार पत्तियों को फँसाने के लिये जाल फैलाकर बैठने हैं । परंतु उनका तो यह व्यापार साधारण है; इसमें कोई विशेषता नहीं है, जो चञ्जेखनीय हो । हाँ, कविजी की सृष्टि में एक नया आविष्कार हुआ है; उन्होंने कड़े परिश्रम के बाद यह मालूम किया है कि स्त्री-रूपी एक बढ़ेलिया अजीब ढंग का जाल बिछाकर उसमें मन-रूपी पत्तियों को फँसाता है । यह कोई ऐसा-वैसा अधिक तो है नहीं, जो आपको उसके जाल का पता लग जाय; उसके जाल की रचना ही विचित्र है । उसके काले-काले, लंबे, घुपराले, चिक्के, कोमल और मीने केशों का पाश बिछे हुए जाल के

सदृश है। यह जाल कोमलता, चिकनाहट और मीनता से ऐसा प्रतीत होता है, मानो रेशम की यारीक रस्सियों से बना हुआ है। क्यों न प्रतीत हो; यह जाल भी किसी ऐसे-वैसे पक्षी के लिये नहीं है। इसमें तो मन-खग फँसाया जायगा, जो इतना नास्तुक है कि थोड़ी-सी चति से नष्ट हो सकता है। इस जाल की तारों पर यह है कि अगर और-और जालों के स्वामियों को अपने-अपने जाल के इर्द-गिर्द छिपकर पक्षियों की तार में बैठे रहना पड़ता है, तो यहाँ पर बैठ रहने की कोई आवश्यकता नहीं है। जाल को हमेशा के लिये बिछाकर उसकी स्वामिनी नायिका निरिन्धत हो जाती है। फिर तो अपने आप यों ही मन आकर इसमें फँस रहते हैं। उन्हें इस फँसने में ही मजा आता है। आप यह कह सकते हैं कि एक बार फँसने पर आप इस जाल से हनुमानजी की तरह सूदमरूप धरकर निकल बाहर होंगे, परंतु क्या आप मन से भी सूदमरूप धर सकते हैं ?

बेनी-बिहार

धर बेनी तिय शीश पै, यहै काज दरसाय ।

मणि रक्खा दित नागिनी, मनहु सपन बन मांय ।

कवि उत्प्रेक्षा करते हैं कि नायिका के सिर पर यह बेनी ऐसी प्रतीत होती है, मानो नागिनी ने घने वन के किसी एकांत स्थान में अपनी मस्तक की मणि को धर रक्खा हो और फिर उसके इधर-उधर फिरकर उसकी रक्षा करती हो ।

वास्तव में उत्प्रेक्षा अनूठी है । नायिका का घने केशपाश से ढका सिर किसी घने वन से ज्यादा भयोत्पादक है । घने वन में तो कतेजाकड़ा करके कोई घुस भी जा सकता है, परंतु नागिनी के कचपारा की सघनता इस प्रकार की है कि दिसारा उसको देखकर ही चकर खाने लगता है । और सपन वन भी ऐसा कि जिसमें घोर अंधकार एक ओर से दूसरे ओर तक फैल रहा है—हाथ को हाथ सूझना मुश्किल है । फिर प्रवेश कर इस कानन का सौंदर्य तो निररसा ही कैसे जा सकता है । परंतु दूर से देखने पर एक किनारे पर कोई चमकीली चीज देखकर दिल को पैर्य होता है । उसका प्रकारा इतना उज्ज्वल है कि दूर-दूर तक के स्थान उसके

आलोक से आलोकित हैं। किसी प्रकार गिरते-पड़ते वहाँ से
 पट्टेचते-पट्टेचते यह मालूम होना है कि जिसको और कुछ बनने
 थे, यह तो एक साँपिन की मणि, किसी पेड़ के महारं, इस जंगल
 के एक झिनारे, रक्खो है; और उसकी मालकिन, बेनी रूप सलिन
 मन-ही-मन उसकी श्रुति देखकर हर्षित होती हुई और उससे
 रक्षा करती हुई उसके चारों ओर घूमती दिखाई दे रही है।
 अरे राम ! यह तो बड़ा भ्रम हुआ; यह तो कुछ और का और
 ही निकला !

कपोल-कल्पना

रत कौन तिय परनि मर पुनि-पुनि यों ठग्याल ;

मुनि मुनि कै केला कथा, हरे न दिए समात ।

रात को नायक और नायिका के बीच रति-क्रीड़ा तो हो चुकी, परंतु यह न समझिए कि फिर उस केलि-कथा का प्रसंग ही न आया हो। बहुत समय बाद तक इस विषय पर टीका-टिप्पणी होनी रही। रात्रि में नायिका के सच अंगों को उस प्रेम-रस के आस्वादन करने का सौभाग्य प्राप्त न था। हाँ, कई-कई अंग अत्यंत सौभाग्यशाली थे, तो पास ही कई ऐसे भी भाग्यहीन थे, जो घटनास्थल पर होने पर भी, इस खीला में शामिल होकर भग्ना भग्यने से महसूस रकरो गए थे; वे बेचारे बड़े दुखी थे। उनका दुरत तो स्वभाविक ही था। भला किसी रसिक दर्शनाभिलाषी को नाटक के मंच में ले जाकर और आँखों पर पट्टी बाँधकर छोड़ दिया जाय, तो क्या वह दुखी न होगा ? यही हाल था बेचारे उन अंगों का ! उस समय तो उनको बड़ा क्रोध आया, परंतु करते क्या ? निस्सहाय थे। और उनको निराश करनेवाले भी तो उनके स्वामी—नायक-नायिका ही थे। आखिर किसके आगे दुखड़ा रोते ? उमड़ते हुए

आँसुओं को पी गए । परंतु दृश्य को जानने के लिये रह-रह कर दिल में आनेवाली उत्सुकता को मन से न मिटा सके ।

पाठक ! आप यह जानने के लिये उत्सुक होंगे कि इस राँ आरुत में पड़े हुए ये अग कौन-कौन थे । यह थी नायिका के बेश पाश से लटकी हुई और उसके कपोलों के सहारे, तनझीन मन-मलीन, पड़ी हुई दो लटे । बेचारी इन्हीं दुखियाओं पर आरुत पड़ी थी । पर “मरता क्या न करता”—इन्होंने भी एक तरकीब ढूँढ निकाली ; ये कपोलों की शरण में गई, जो उनके पद्मोस में हो रहते थे । कपोल बड़े सहृदय थे; इनकी इस रात पर उनको दिया आ गई । फिर शरणागत की रक्षा करना परमार्थ समझकर इनका दुःख दूर करना उन्होंने अपना कर्तव्य माना, लटों की इच्छा पूरी की गई—प्यारे दंपति की कीड़ा हिम प्रकार रही, उसमें कपोलों ने क्या पार्ट खेला इत्यादि सब हाथ बटाया गया । ये सब बातें जानाहुँसी में कपोलों ने लटों को सुनाई । लटों का दुःख दूर हो गया । ये तो अश्रुमण्डप में मग्न हो गई, और बार-बार मारे सूर्य के लग्गों उद्गलने । मन्ना इनके छोटे-से हृदय में यह आनंद-ग्लान कैसे समाना ? सो तो अगर वे यह दृश्य आँखों देख लेतीं, तो न-जाने क्या करती !

जा. मं.
31/12/00

भौरों की भीर

भलि कुंआई चलि जाति ही, भद भौरन का भीर ।

सद लखि काहू मेरगन, बिबाकल लखि कीर ।

नायक-नायिका ने अपने मकान में बंदों के मौजूद होने के कारण, मिलने का मौका न पाकर, एक तरफ़ीय दूंद निकाली । नायक ने नैन-सैन करके अपनी प्रिया को सांकेतिक स्थान बता दिया और स्वयं उम तरफ़ चल पड़ा । मालूम होता है यह स्थान कालिंदी-कुल का कोई कर्बुकुंज ही था, जहाँ चिरफ़ाल तक इस कामिनी और कांत ने खेल कर के अकथनीय आनंद लूटा होगा । नायिका तुरंत लाद गई; और नायक के चले जाने के कुछ समय बाद कुछ बहाना बनाकर उधर रवाना हुई । परंतु बेचारी का रूप-सौंदर्य ही घैरी बन गया । लुटेरों ने अचानक आक्रमण किया । उसके शरीर से निकलती हुई मुधास ने इन डाकुओं को सेंध बता दी । भौरों को पद्म-पराग का पता मिला, वे मनकार करते हुए चारों ओर से च्या जुटे और नायिका पर मेंहराने लगे । उधर सर से लटकती हुई लंबी-लंबी लटों को नागिनियाँ समझकर उनके स्वभाव-शत्रु मयूर उन्हें मारने दौड़े । अधरों को पके हुए बिबाकल जानकर कीर लालच को न रोक सके—उनके

सुधांशु-रूप ललाट में न रहकर अघर में ही अटकी हुई है। कविजी ने इस शंका का यों समाधान किया है—अमृत का आधार तो ललित ललनाओं का ललाट ही है; परंतु उसे सुधाकर अपनी शीतल किरणों को फैलाकर सोम इत्यादि जड़ी-बूटियों को अमृत प्रदान करता है, उसी प्रकार यह ललाट भी अघर को अमृत प्रदान करता है। परंतु इसे क्या पड़ी, ओं बिना मांगे ही अघर को दान देने दौड़ता है? यह तो इन अनोखे अमृत की ही कसमात है कि स्वयं ललाट से द्रवित हो कर अघर में आ ठहरता है, जिससे कि प्यारे की प्यास तब कुछ प्रयास के ही बुझ जाय। या रवि समय पति को प्रेयसी के ललाट तक पहुँचने का कहीं परिश्रम न करना पड़े, यह सोच कर प्रेमदेव ने अपने पुण्य-प्रकाश के प्रभाव से अमृत की आकर्षित कर के अघर में ला रक्खा है।

कमल की केसर

रतीसमय बेदी दिए, तिय मुख मो मन भाय ।

लाल कमल विकस्यो मनहु, बीच पराग सुहाय ।

इ एक नायक के मनरूपी कैमरे में खींचा हुआ, रति का प्रिया के मुख-पद्म का भाव-चित्र है। लीजिए, इस और कीजिए और इसके मननानंद में भग्न हो सुख-सागर में लगाइए। दिन का समय है। प्रेम-रूपी पौदे के विकास से वसंत-का-सा अवसर है। इधर नायक और नायिका तेज हो रति-क्रीड़ा आरंभ की है, तो उधर उसी समय सलिलरूपी सुखद शय्या पर सोती हुई सरोजिनी के साथ । भी क्रीड़ा शुरू की है। अपने-अपने प्रियतम की गोद में । हुई नायिका और पद्मिनी पूर्ण आनंदोल्लास को पा रही सूर्य-करों के सुखदायी स्पर्श का अनुभव कर कमलिनी ने विकाश पाया है, और नायिका ने नायक के अन्य आनंद से एक अनोखी आभा धारण की । काचेहरा लालवर्ण हो गया है, तो उधर । गर्भस्थ लाली को धटा छिटका दी है। । नी ने संकोच को छोड़ अपने अंदर की

सुंदरता इस प्रकार दरसा दी, जिस प्रकार नायिका के सुवर्ण
चेहरे ने केसर की पीत बेंदी ! जिनको देख-देखकर नायक
महोदय और सूर्यदेव के मन-भृग छलांगें मारने लगे । भला
इस प्रकार की दर्शनीय दृश्यावली कविजों के मन में क्यों न
चुभेगी; इसकी तो स्मृति ही रसिकों के मन को मुग्ध कर
देती है ।

शत्रुओं की सजा

मू कबाल खग मृग लिए, मीन बरौनी जाल ;

कमलनि लागि भीरा मये, किए सधनि बेहाल ।

चारों ओर शत्रुओं की कौञ्च फिर आई । उत्तर] से खंजन पक्षियों के मुँह-के-मुँह अपनी चपलता और कटीलेपन को फिर से छीनने के लिये मफटे; परिवम से मृगों के समुदाय पवन-वेग से अपने लीले सींगों को मुकाकर अपने नेत्रविस्तार को वापस लौटाने को लपके; पूर्व से कमलों की कतार अपने दिल को कड़ा करके, अपनी कोमलता, रंग, स्निग्धता, सौंदर्य इत्यादि सर्वस्व का अपहरण करनेवाले पर आक्रमण करने के लिये पैर न होने पर भी उठ दौड़ी; दक्षिण दिशा से, समुद्र को कभी न छोड़नेवाली मधलियों ने भी अपने आकार और चंचलता की चोरी करनेवाले को दंड देने का इरादा करके अपने वासस्थान को छोड़ा; और चारों ने मिलकर चारों ओर से घावा बोल दिया । परंतु इधर नेत्र भी पहले से ही होशियार थे । उन्होंने जर्मनी की तरह पहले से ही लड़ाई के लिये तैयारी करनी शुरू कर दी थी । अतः ये इस अचानक आक्रमण से तनिक भी भयभीत न हुए, और अपने सिपहसालारों को शत्रुओं

का सामना करने के लिये भेजा । कमांडरइनचीफ (Commander-in-chief) भयावने, बाँके वीर भूने अपनी कमान को तानकर उत्तर और पश्चिम की ओर भयानक बाण-वर्षा करनी प्रारंभ की । हजारों की संख्या में मृग और खजन घण-शायी होने लगे । बहुत-से तो डर के मारे ही मर मिटे और जो बाँकी बचे, वे दुम दबाकर भागे । वीर यरौनी ने अपना जाल फैलाकर दक्षिण से आती हुई मछलियों का मुकाबला किया, और सबको फँदे में फँसा लिया । अब बाँकी बचे कर्महीन कमल, सो उनका बचा-खुचा खजाना भी प्रवीण पुतलियों ने धमरों का भेप बनाकर लूट लिया, और उनको डरा-धमका कर यों ही घत्ता बता दिया । तीनों वीरों ने अपना-अपना काम कर दिखाया, और अपने सर्वगुण-संपन्न स्वामी से सम्मान पाया । शत्रुओं को सखी सखा मिली ।



रूप-नगर के राजद्वार

पुतली प्रहरी, पलक पट, बलम, बरौनी नार ;

रूपनगर के नैन हैं, मानहु मायाद्वार ।

पाठक ! आपने अनेक नगर और दुर्ग देखे होंगे; उनके दरवाजों पर पहरा देते हुए पहरेदारों, बड़े-बड़े लोहे के फाटकों और उन पर लगे हुए लोहे के तीखे भालों को भी अवश्य देखा होगा । परंतु क्या कभी आपने ऐसे आश्चर्यजनक और भ्रमोत्प्रादक द्वार भी देखे ? इस रूप-नगर के द्वारों का हम क्या वर्णन करें ! यदि आप रूप-नगर के राजद्वार देख लें, तो आपको नगर के अंदर के ऊँचे, रमणीय और दर्शनीय प्रासादों को देखने का मन हो न करे; ऐसे सर्वांग सुंदर हैं ये नैन-द्वार !

संसार-भर के साइंटिस्ट (Scientists) तथा बड़े-बड़े कारीगर थक हारे, परंतु ऐसा द्वार न बना सके । यदि इनका वर्णन तक न कर सके और चित्रकारों से इनका चित्र तक न उतरा । इन दरवाजों का आधार ही अनाम है । दोनों पुतली रूपी पहरेदार दिन-भर दरवाजों के एक कोने से दूसरे कोने तक टहल-टहलकर पहरा देते रहते हैं । कोई और आदमी इनकी नजर से बचकर नहीं जा

का सामना करने के लिये भेजा । कमांडरइनचीफ (Commander-in-chief) भयावने, बाँके वीर भू ने अपनी कमान को तानकर उत्तर और पश्चिम की ओर भयानक बाण-बारण करनी प्रारंभ की । हजारों की संख्या में मृग और संपन्न घा-शायी होने लगे । बहुत-से तो डर के मारे ही मर मिटे और जो बाक़ी बचे, वे डुम दशाकर भागे । वीर वरौनी ने अपना जाल फैलाकर दक्षिण से आती हुई मदलियों का मुकाबला किया, और सबको फँदे में फँसा लिया । अब बाक़ी बचे कर्महीन कमल, सो उनका बचा-सुचा खजाना भी प्रवीण पुतलियों ने भ्रमरों का भेष बनाकर लूट लिया, और उनको डरा-धमका-कर यों ही धत्ता बता दिया । तीनों वीरों ने अपना-अपना कान कर दिखाया, और अपने सर्वगुण-संपन्न स्वामी से सम्मान पाया । शत्रुओं को सच्ची सजा मिली ।

और नहीं बच सकता । उसको वे अपने भाया-जाल में फँसा ही लेते हैं ।

अब दरवाजे के कपाटों का हाल सुनिए; वे पल-पल में खुलते और बंद होते रहते हैं; वे पहरेदारों की आज्ञा का पालन करने में कुछ उठा नहीं रखते । उनके सोने पर बंद हो जाते हैं, और जगने पर खुल पड़ते हैं । और यदि वे किसी अपने प्रेमी को देखना चाहते हैं, तो अनिमेष होकर खुले रहते हैं । इनमें से होकर एक रज का कण तक प्रवेश नहीं कर सकता; नहीं तो रूप-नगर कभी का कुरूप न हो गया होता ?

इतने कोमल होने पर भी ये कभी-कभी वज्र का काम कर जाते हैं । ये बरौनी-वालरूपो भालों से सुरक्षित हैं, जो अत्यंत तीखे और दूर ही से हृदय को घेधनेवाले हैं । ये भाले मित्रों ही के हृदय में घुसकर पाव पैदा करते हैं, और मित्र ही इस द्वार में कैद किए जाते हैं; दूसरे नहीं । शत्रु तो इनमें खटकते हैं, इसलिये बाहर फेंक दिए जाते हैं । बरौनी के भालों से घायल होने और इस बंदीगृह में सजा पाने ही में मजा है । अपने मित्रों के घिराव में कभी-कभी इनमें से जल-धार बहकर सबके दुःखों को दूर कर देती है, और कभी-कभी दूना कर देती है । इस जल-धार में शत्रु और मित्र, दोनों बह जाते हैं । यह धारा भी कभी हर्ष की, कभी क्रोध की, कभी दया की,

सकता । इनकी कभी बदलो नहीं होते । बेचारे पुण्ड्र ने विरवा-
पात्र नौकर हैं; जादू के पुतले ही समझे ! ये कुछ बोलते नहीं,
केवल अपने भिन्न-भिन्न भावों को ही कलकते हैं । इनमें दया,
करुणा और अनुराग का भाव देखते हैं, ता रूपनगर के दरांग-
भिलापियों की हिम्मत बँध जाती है, और वे तिपटक अपने
मन को इन पहरेदारों के सुपुर्द कर देते हैं । परन्तु याद रखिए,
यदि द्वार किसी के मन को रूप-नगर की छवि दिखाकर धांस
नहीं लौटाते; उसको फिर हमेशा के लिये वहाँ रहना पड़ता
है । यदि इनमें क्रोध इत्यादि का भाव देखते हैं, तो किसी को
इनके पास तक फटकने की हिम्मत नहीं होती । ये दिन भर
पहरा देते हैं; और-और पहरेदारों की तरह रात को न जाग-
कर आराम करते हैं । कभी कोई ऐसा दरांग आ जाय, जो कि
इनका परम मित्र हो, तब भले ही ये जगकर अपने मित्र को
बानाँलाय का आनंद-मदान करें, बरना बिना कोई कारण वे
कभी नहीं जगने । इन्हें जगने की आवश्यकता हो क्या है । जब
ये बरोनी रूपी बल्लम लगे हुए पलकदारी कपाटों की अस्थी
तरह से बंद कर सोने हैं; और इनने होशियार और चंचल हैं
कि किसी के नगर की बहारदीवारी को घुरी ओंगों में घूमे ही
सजग हो जाते हैं, और इनके बेगन होने ही माया-द्वार गूँथ
पड़ते हैं । इनको हाथ में रूने तक की जरूरत नहीं है, फिर तो

घोर नहीं बच सकता । उसको वे अपने माया-जाल में फँसा ही लेते हैं ।

अब दरवाजे के कपाटों का हाल सुनिए; वे पल-पल में खुलते और बंद होते रहते हैं; वे पहरेदारों की आज्ञा का पालन करने में कुछ उठा नहीं रखते । उनके सोने पर बंद हो जाते हैं, और जगने पर खुल पड़ते हैं । और यदि वे किसी अपने प्रेमी को देखना चाहते हैं, तो अनिमेष होकर खुले रहते हैं । इनमें से होकर एक रज का कण तक प्रवेश नहीं कर सकता; नहीं तो रूप-नगर कभी का कुरूप न हो गया होता ?

इत्ने कोमल होने पर भी ये कभी-कभी वज्र का काम कर जाते हैं । ये बरौनी-वालरूपी भालों से सुरक्षित हैं, जो अत्यंत तीखे और दूर ही से हृदय को बेधनेवाले हैं । ये भाले मित्रों ही के हृदय में घुसकर पाव पैदा करते हैं, और मित्र ही इस द्वार में कैद किए जाते हैं; दूसरे नहीं । शत्रु तो इनमें खटकते हैं, इसलिये बाहर फेंक दिए जाते हैं । बरौनी के भालों से घायल होने और इस बंदीगृह में सजा पाने ही में मजा है । अपने मित्रों के विरह में कभी-कभी इनमें से जल-धार बहकर सभके दुखों को दूर कर देती है, और कभी-कभी दूना कर देती है । इस जल-धार में शत्रु और मित्र, दोनों बह जाते हैं । यह धारा भी कभी दुर्ष की, कभी क्रोध की, कभी दया की,

कभी करुणा की, कभी वेदना की और कभी प्रेम की होती है और भिन्न-भिन्न असर रखती है। प्रत्येक द्वार में संसार के सब सुंदर मुंदर चित्र टंगे हैं। फिर इनमें तीन 'श्वेत श्याम, रतनार' घड़े हैं। जो—

अमो, हलाहल, मद भरे, श्वेत श्याम रतनार।
जियत मरत मुक्ति-मुक्ति परत, जेहि चितवत एक बार।



कपटी काम

मैनन पुतरी मैन यद, है पलकन की ओट ;

दोड़ि बान ताकि तानकर, हरत प्राण करि चोट ।

नायिका के नेत्रों में जिनको आप पुतलियाँ समझे हुए हैं, वे पुतलियाँ नहीं हैं । ये तो आँखों में मदन महाराज विराज रहे हैं । आप पलकों की ओट से दृष्टिरूपी बाणों से निशाना ताक-कर ऐसी चोट करते हैं कि प्राण हर लेते हैं ।

मालूम होता है कि शिवजी से डरकर मदन महाराज ने नायिका के नेत्रों को अपना निवास-स्थान बनाया है । खूब एक कोने में आश्रय लिया है । यहाँ वे सुरक्षित रहेंगे, इसमें कोई शक नहीं; क्योंकि जब ये डरकर स्त्री की शरण में आ गए, तब भोले शिव इन्हें क्या कह सकते हैं । परन्तु हज़रत अपनी आदत से बाज नहीं आते हैं । फिर वही बाण और कमान, फिर वही घोड़े और वही मैदान । क्यों नहीं, शिवजी का तो अब डर रहा नहीं, फिर वे कब चुप बैठ सकते हैं । पहले सारे मैदान शिकार किया करते थे; अब तो आँखों की ओट से आखेट करते हैं ।

इन आँखों के इतनी मनोहर मालूम होने का रहस्य अब प्रकट हुआ है । इनमें तो प्रत्यक्ष कामदेव विराज रहे हैं; फिर

भला क्यों न ये इतनी सुंदर प्रतीत हों। नायिका के नेत्रों के सामने से गुजरते ही एक चोट लगती थी, मगर इधर-उधर देखते हैं, तो कोई नहीं दिखलाई पड़ता था। इस शिकारी का हमें क्या पता लगा है। पहले हम नहीं जानते थे कि यह इन गुरुजी की कारगुजारी है।

मगर एक बात है; भद्रन महाराज ! मृग का बेरा बनाकर भक्तियों के मन्त्ररूपी मृगों को मारने से आपको मृगया की कोई महत्ता नहीं मालूम होती।

मायावी की माया

मायावी नैना चंचल, स्थिर, पान अह दीन ;

बनत कमल खंजन कभी, मृग, चकोर, अह मीन ।

ये नेत्र बड़े मायावी हैं—ये पूरे जादूगर हैं। देखते नहीं हो कि ये किस प्रकार मौक़े-मौक़े पर मिश्र-मिश्र भेष बनाते रहते हैं—कभी ये इतने चंचल बन जाते हैं कि चपलता स्वयं इनके सामने चपती है; कभी ये बहुत विस्फारित हो जाते हैं, तो कभी दीन-हीन बनकर बैठ जाते हैं—मानो सचमुच ही ये “नैना बड़े गरीब हैं, रहत पलक की ओट”—कभी सरोज फा-सा सुंदर स्वरूप बना लेते हैं, तो कभी खंजन के समान चंचल बन जाते हैं; कभी मृग की-सी भोली-भाली दृष्टि बना लेते हैं, तो कभी चकोर की नाई टकटकी लगाकर देखने लगते हैं; कभी-कभी मीन की-सी चपलता इछितयार कर लेते हैं, तो कभी-कभी इस तरह स्थिर हो जाते हैं कि स्वयं स्थिरता भी सजुचाती है !

देखी इन नेत्रों की करामात ! इन्होंने तो कामरूप देश की कामिनियों को भी किस्म दे दी। पोलीटिक्स में भी ये पूरे प्रवीण प्रतीत होते हैं। जय जैसा मौक़ा देखते हैं, तब वैसा ही रंग-ढंग, वैसा ही हाव-भाव, वैसी ही सूरत-शकल बनाकर जिस

तरह हो अपने कार्य की सिद्धि करते हैं^१। जब नायिका को कोई चिंता होती है, तब उसके नेत्र अनिमेप हो कमल-गुण की पंखुड़ियों की तरह खुले-के-खुले रह जाते हैं, अथवा सोप में रात्रि के कमलों के सदृश सकुचा जाते हैं। जब नायिका को कामोदीपन होता है, तो नेत्रों में काम छा जाता है, और ये मीन के समान मुखरूपी सरोवर में तैरने लगते हैं। जब नायिका के हृदय में भय उत्पन्न होता है, तो नेत्र रात्रन के समान चंचल हो जाते हैं। जब नायिका को प्यार की प्रतीक्षा होती है, तो प्रेम-दृष्टि से नेत्र टपटपकी लगाकर नायक के आने के मार्ग को देखने लगते हैं। जब दीनता दिखलानी होती है, तो मृग बनकर दया की भोवत माँगते हैं। ये बड़े बड़े तीर-दाउ भी हैं। जब इस नेत्ररूपी कमान से मुक्तकिक निम के तीर-जीम तीर चलने हैं, तो बड़े-बड़े थोड़ाओं को मुद-चेत्र से पीठ दिखलाकर भागना पड़ता है। कभी ये नेत्र काम-दृष्टि से काम तमाम कर डालते हैं, तो कभी सोप-दृष्टि से सिद्धार मंजने लगने हैं। कभी ये भय-दृष्टि से भगा देने हैं, तो कभी प्रेम-दृष्टि से पारा में बाँधकर बागमूह में बाँध देने हैं।

इन नेत्रों की सुंदरता का वर्णन कहीं तक दिया जाय, वग इसी बात से अगर इनके मौख्य का अनुमान कर भी-प्रिय

कि कमल इन नेत्रों की कमनीयता को देखकर सदा जल में खड़ा हुआ सूर्य को जलाजलि देता रहता है। इस कठोर तप से सूर्य को प्रसन्न करके सरोज नेत्रों के सदृश सुंदरता की प्राप्ति का वर माँगना चाहता है। इन नेत्रों को-न्सी नायाब द्रवि पाने के लिये ही कुरंग कानन का सेवन करते हैं। इसी तरह मीन भी जल में धोर तप कर रही है। इसी हेतु से चकोर चंद्रमा को चाकरी कर रहा है, और खंजन भी इसी चिन्ता के भंजन की क्रिक में कहीं फिर रहा है।

प्रेम-पीड़ा

मीन कमल जल में रहें, पै नैनन में नीर ;

बाहू करते पीर ये, हमहू करते पीर ।

मद्दली और कमलों का जो आधार है, वही नैनों का आश्रय है । मीन और कमल जल बिना जीवित नहीं रह सकते, किंतु नैन नीर के आश्रय-दाता हैं । अब पाठक स्वयं सोच लें, इनमें से कौन से मदत्ता में बढ़े-बढ़े हैं । मीन और कमल तो गुलामों के भी गुलाम हैं; नैनों का गुलाम नीर उनका मालिक है । फिर भला वे नेत्रों की समता कैसे पा सकते हैं । यह कवियों की कही हुई मूठी कपोल-कल्पित कथाएँ हैं, जिनके आधार पर हम नेत्रों को ही उलटा कमल और मीन की उपमा दे बैठते हैं । अब आप ही कहिए, हम ऐसे कवियों को किस वस्तु से उपमा दें ? नेत्रों को इतना ऐश्वर्यशाली देखकर कमल और मद्दलियों के मन में पीड़ा होती है । यह कवियों ही की करतूत है कि उन्होंने उनको, आँखों के सदृश फड़क-ठूठा बढ़ावा दे दिया है, जिससे वे अपने आश्रय-दाता के आश्रय-दाता तक पहुँचने की इर्ष्या करने लगी हैं ।

! हमारा क्या बिगड़ता है—दुःख होगा, तो दन्तों

होगा । परंतु यह हमारा कर्तव्य है कि इन बड़ों की होड़ा-होड़, गोड़ फोड़कर, व्यर्थ कष्ट उठानेवालों को हम सचेत कर दें । हमारे चित्त को भी ये नेत्र अपने सौंदर्य के प्रभाव से पीड़ित करते हैं; परंतु यह प्रेम-पीड़ा है ! जिनको यह पीड़ा होती है, और जिनको नहीं होती, उन दोनों को ही भाग्यशाली समझना चाहिए; जिन्होंने इस पीड़ा का अनुभव नहीं किया, वे तो आनंद में हैं ही, परंतु जिन्होंने इसका मजा चखा है, वे भी इसी में परमानंद का अनुभव करते हैं, और परमेश्वर से इस पीड़ा को घटाने की ही प्रार्थना करते हैं ।



चंचलता की चाह

चंचलता मानन हमें, कारण चंचल नैन ;

जैसे को लैसा दवे, कबहूँ अन्य दवे न ।

चंचलता को हम चाहते हैं । चंचलता की चटकीली चर्चा सबके चित्त को चुरा लेती है । जहाँ देखते हैं, चंचलता का चमत्कार नजर पड़ता है । सर्वत्र उसके गीत गाए जा रहे हैं । कवियों के काव्य में भी इसी की कथा मिलती है । एक साहब करमाते हैं—“सौ घूँघट को ओट करो, पर चंचल नैन छिपें न छिपाए ।” तो दूसरे शायर, जिन्हें चंचलता की चाह पड़ गई है, कहते हैं—“कुछ भी मखा नहीं जो यार चुलचुल न हो ।” यह सब कुछ माना । किंतु किसी ने यह भी कभी खयाल किया कि चंचलता को सब इतना क्यों चाहते हैं ?

ये नेत्र सदैव नाचते ही रहते हैं । रात में, निद्रा में भी ये चुप नहीं रहते । स्वप्न-संसार में दौड़ लगाया करते हैं—शांति से बैठना तो ये सीखे ही नहीं । इनकी चंचलता के कारण बड़ों-बड़ों की नाक में दम है । अब यह नियम है कि जो जैसा होना है, उसको वैसा ही दखता है । अतः नेत्रों को चंचल वस्तुओं से बड़ी प्रीति है, क्योंकि वे छुद स्वभाव से चंचल हैं । पाठक !

आप समझ गए होंगे कि चंचलता के चसके का क्या भेद है। चपलता के कारण ही हमें भृग छलारिं मारता हुआ अच्छा लगता है। इसीलिये भीन जल में तैरती हुई सुंदर लगती है। इसी चंचलता के कारण चमकते तारे आँखों को अच्छे लगते हैं। चंचलता के ही कारण हमें बालक भाते हैं। चंचलता के ही कारण हम चिड़ियों को चाहते हैं। चंचलता के प्रभाव का कहीं तक वर्णन करें; इसने 'च' अक्षर तक को ऐसा अपना लिया है कि चंचलता के पर्यायवाची शब्दों में जहाँ देखते हैं, पहलेपहल 'च' चमचमा रहा है, यथा—चंचलता में 'च', तो चपलता में 'च', तो चुलबुलापन में 'च'—'च' की अच्छी चल रही है।

प्रेम का प्रभाव

प्रिय पै जादू कान, कानन पहले सेइ के ;

पान प्रेनरस लान, खिचि आए प्रिय बैल बनि ।

नायिका के नेत्रों ने पहले कानन का सेवन किया। वहाँ एकांत में वास करके उन्होंने उच्चाटन, वशीकरणादि मंत्रों का साधन किया, जिससे उनमें जादू की-सी अथवा चुंबक की-सी आकर्षण शक्ति आ गई। उन्होंने पहलेपहल इस ताकत को अपनी प्यारी सखी नायिका के प्रिय पति नायक पर ही आजमाया। उन्होंने प्रेम-रसरूपी पान नायकजी को खिलाया, और आप उसको लेते ही बैल बनकर खिच आए।

पाठक ! आपने कामरूप देश की आरचर्मजनक कथा-कहानियाँ सुनी होंगी। वहाँ की कामिनियाँ जादू-टोना करने में बड़ी मशहूर हैं। वे जिस सुंदर पुरुष पर आसक्त हो जाती हैं, उसे पान खिलाकर तोता, बैल या मेंढा बना लेती हैं। उनको नित्य अपने पास रखती हैं और जब इच्छा होती है, तब उन्हें पुनः पुरुष बनाकर प्रेम-केजि करती हैं। उनके जादू के आज्ञा में पैंसटकर बेघारे मनुष्य फिर कभी बाहर नहीं निष्पन्न सकते। आजन्म जानवर ही बने रहने हैं। यही राज हमारे

नायकजी का दुश्मा है। कान तक बड़ी, सुंदर-सुंदर आँखों ने, वन पर अपना प्रेम प्रकट करके, वनको घैल-जैसा सीधा-सादा और भोला-भाला पशु बना लिया, और वे उनकी इच्छा और आशा के अनुसार ही सब काम करने लगे। आप कहेंगे कि उन्होंने अपने प्रेमी को घैल बनाकर बड़ा बुरा काम किया, परंतु क्या आप नहीं जानते कि घैल घम का अवतार है, उससे संसार को बड़ा कायदा पहुँचता है। उस पर शिवजी को बड़ी कृपा है।

परंतु हाँ ! एक बात का डर अथरय है—जो कहीं वह पाश्चात्य सभ्यों के हाथ लग गया, तो बेचारे की बड़ी दुर्दशा होगी। देखते नहीं, आज इन धर्म-वीरों की इस धर्म-भूमि भारत में स्त्रियों की संख्या में इतना घटती है और हम घूँ तक नहीं कर सकते। जिनकी माता गायों के दूध, दधि और घृत से हमारा धीर्य बनता है, और उससे हमारी रीति-रिवाज होकर फिर बड़ी अमोल अमृत समान रस पीकर पलती हैं; उन्हीं हमारी प्यारी माताओं और प्यारे माइयों की इत्या हम अपने ही देश में होनी देखने हैं, और हर या लालच-वश गुलामों की तरह सदे जाते हैं। भला यह इत्या हमारे माथे नहीं, तो और किनके माथे है ? हिंदूधर्मावलंबियों को यादिए कि वे अपने और अपने पूर्वजों के नाम को सार्वक कर दिखावें। अब भी समय

दे । क्या दुपारों का सामना करने की इतनी हिम्मत
मरी ?—क्या दे ।

दे हमारे प्यारे गोकुल ! तू गोवर्धन गिरि पर गारं बगले,
बगो पर गोल गा-गाकर गोविंदों की गगरियाँ फोड़ने की
गोरम महल करने और हम तुम्हारे मर्यादित गोद में
पानकों के हाथ में बसाने क्या करेगा ? उह्र आ ! दर
तो यह निमेष हमसे सदा नहीं जाता !

चित्र से चिढ़

लासि मुखमा निज रूप की, नैन मँपत हर बार :

चित्र कोउ दिव में न तरु, लेवहि तुरत उतार ।

नेत्र जो बार-बार मँपते रहते हैं, इसका कारण यह है कि ये अपने सौंदर्य को देखकर डरते हैं कि कहीं कोई इस सुंदर सीनरी, इस नायाब नजारे को देखकर तुरंत अपने दिल के डेडकैमरे में इसका फोटो न ले ले। मगर मालूम होता है, इन बेचारे भोले-भाले नेत्रों को यह पता नहीं है कि ये चित्रकार भी बड़े राजब के लोग होते हैं। ये अपनी चातुरी से खुद आँखें नहीं, आँखों के अक्स को पानी में देखकर उसी बात तस्वीर ले लेते हैं। मुगल-सम्राट् अकबर के राज्य-काल में, उसी के दरबार में के चित्रकारों में से, एक ने इसी प्रकार एक चित्र तैयार करके बादशाह सलामत की भेंट किया था।

यह दिल ऐसा-वैसा कैमरा नहीं है कि जिससे कोई बचकर निकल सकता है। आँखों का हा क्या, इसमें तो चार लोग सारे चार का ही छाका खींच लेते हैं। और फिर उसको खामुश दिल में लगा देते हैं और तबियत में जोश आते ही

एक नजर उधर फेंक देते हैं—“दिल के आईने में है तस्वीर
यार, जब जरा मर्दन मुकाई देख ली।” इसी दिल के आईने की
दुहाई देते हुए कोई कहता है—

“बेमुरव्वत बेरुखी से शीशए दिल को न तोह ;

यह वही आईना है, जिसमें तेरा तस्वीर है।”

अतः नेत्रों को चाहिए कि अपने नायाब नमकीनपन पर
अब इतना नाज करना छोड़ दें। इन बेचारों को शायद यह
मालूम नहीं है कि एक-दो नहीं, हजारों की तादाद में इनके
फोटो को कॉपियाँ तैयार होकर अब बाजार में बिक रही हैं।
एक घात और है, आपने नायिकाओं को देखा होगा कि अपने
सलोने मुख को दीठ से बचाने के लिये उस पर दे लेती हैं
ईठ—मगर नतीजा क्या होता है—“दूनी है लागन लगी तिर
दिठौना दीठ।” यही हाल इन आँखों का है। ये तो बार-बार
इसलिये मँपती हैं कि जिससे कोई इनकी तस्वीर न ले
ले, मगर बार-बार मँपने के कारण ये और ज़्यादा
खूबसूरत मालूम होने लगती हैं। नतीजा यह होता है
कि लोगों की तस्वीर लेने की ख्वाहिश और दुगुनी हो
जाती है।

प्रेम-पारा

दिय जल मंदिर मौन है, पलक प्रकटि कुरे जात ।

सुनक ताहि फासन चाहत, ताही में पमि जात ।

॥ सुंदर सरोवर पर किसी का प्रमोद-प्रासाद—आनंद-भवन
ढाँरी पर घैठी हुई नायिका पानी में भौंक रही है। उसके नेत्रों
विबिध, पलक खुलने और झपने की क्रिया के कारण, कभी
में दिखाई देता है और कभी अदृश्य हो जाता है। नीचे की
। जबानी दीवानी के बहकाए हुए नायक महाराज विराज-
हैं। आपकी नजर जलाराज में पड़ते ही आपने देखा कि
दूर मछलियाँ पल-पल में प्रकट होकर जल में गायब हो
हैं। बेवारे को ऐसी मछलियों का कभी दर्शन तक नहीं
गा, इसलिये मन में पाप समा गया। आप तुरंत जाकर
। आप, जल पानी में डालकर उन बंचल मछलियों को
का प्रयत्न करने लगे।

पका या तो इनको और ज्यादा बेवकूफ बनाने के इरादे से
नहीं हटी; और यदि उसे यह भालूम न हुआ होगा
। जो आँसों के प्रतिबिम्ब को ही मछली समझकर पक-
हते हैं, तो शायद वह उनके शिकार करने के चातुर्य को

ही दंगने कं जिये बरी इटी रही । युवक महाराज
में ही मान थे । दिन-भर सोन गया पर मद्यली हा
आवसी समझ में खुद नहीं आया । सोचने
अजीब मद्यलियाँ हैं—सामने दिगाई देती हैं, प
नहीं फँसती । इसी तरह उन मद्यलियों के जा
फँसे रहे ।

अंत में हारकर आपने ऊपर की ओर दृष्टि फेंकी
मोंप की कमी न रही । उसको नायिका के नेत्रों क
समझते ही आप नायिका के नयनरूपी मीन के उ
जा फँसे—प्रेम-पारा में डलक गए । देखा आपने !
को जाकर खुद ही डलक गए । इतनी मेहनत का
मिला ।

काम की कसौटी

कोटिज हू विधि अगत में, तिरज वस्तु सुषंदन ;

सुंदरता को औंधिबे, रचे कसौटी नेन ।

विधि ने सन्सार में करोड़ों सुखदायक वस्तुओं की सृष्टि करके उनके सौंदर्य को जाँचने के लिये नयनरूपी कसौटी बनाई है ।

सचमुच यही बढ़िया कसौटी है । जिस सौंदर्य को चाहो इस पर कसकर देख लो, उसी वक्त यह बतला देगी कि सरा है या खोटा । एक चंदू, के शायर ने इन नयनों को काँटा बनाया है ।
मुनि—

मीरत तो एक जाहरे सुक्रिया बरार का है ;

तुलता है त्रिममें हुस्न वह काँटा नवर का है ।

यह नवर का काँटा हुस्न तौलता है, किंतु कसौटी के मुक्ता-बले में यह काँटा नहीं ठहर सकता । फटि में बाँटों का मगड़ा रहता है । अगर बाँटों के रखने में थोड़ी भी गलती हो जाय, तो तौल कुछ-का-कुछ हो जाय । अगर किसी को बाँटों की पहचान न हो, तो कुछ-का-कुछ समझ ले । इसके अतिरिक्त यदि फटि में थोड़ी-सी भी कान हो, तो यही भारी गलतफहमी हो जाने का दर है । कसौटी में इस त्रिम्भ की कोई दिक्कत पेश

नदी का मछनी । धम, बस्तु को लिया और धम पर धम
और धमी बतः धमनियन को पहुँच गए । इस कसौटी के
विषय में अधिक कहने की कोई आवश्यकता नहीं है ;
क्योंकि विधि ने दया करके हम मयको यह कसौटी दी है ।
कसौटी देकर विधि ने यह बड़ा बुद्धिमानी का काम किया,
करना उसकी सृष्टि में रूप और धुरूप दोनों एक साथ
पिकने । बड़ा भारी अन्याय होता । जहाँ इस बड़े दुन
के बाजार में आप चहल-नहल देखते हैं, वहाँ आप एकदम
समाटा पाते और सौंदर्योपासना का किसी को स्वप्न भी नहीं
आता !

चतुर चकोर

चमक रहे तारे नहीं, ये नभ में चहुँ ओर ;

पतियन को है खोजते, विरहिनि नयन-चकोर ।

ये जो नभ में चमक रहे हैं, वे तारे नहीं हैं; किंतु विरहिनी स्त्रियों के नेत्र चकोर बनकर अपनी नायिकाओं के पतियों को ढूँढ़ रहे हैं ।

अब तो आँखें अच्छी उड़ान लेने लगी हैं । कहाँ पहुँची हैं, आसमान पर ! अब पति कहाँ छिप सकते हैं ? अब तो आँखें ऊपर से दूरबीन की तरह पृथ्वीतल का कोना-कोना देख लेंगी । पति होंगे तो पृथ्वी पर ही, फिर बचकर कहाँ जा सकते हैं । आँखों की इस हालत को देखते हुए तो अगर पतिजी महाराज पृथ्वी को छोड़कर सातवें आसमान पर पहुँच जायें, तब वहाँ से भी ढूँढ़कर ये उनको निकाल लाएँगी ।

आवश्यकता से ही नए-नए आविष्कार उत्पन्न होते हैं । यदि यह आवश्यकता न होती, तो बेचारी नायिकाएँ क्यों अपनी प्यारी आँखों को तारे बनाकर, इतनी ऊँची उड़ाकर, रात के समय अपने पतियों को उनसे ढूँढ़वातीं ।

हम इन तारों की सुंदरता को देखकर बड़े प्रसन्न हुआ

करते थे । किंतु इनकी सुंदरता का रहस्य तो हमें अब मालूम हुआ है । ये तो नायिकाओं के सुंदर नेत्र हैं । भला फिर क्यों न सुंदर दिखलाई दें । अकसोच ! हम चंद्र नहीं हुए, वरना खूब रात-भर ऊपर से ही इन आँखों के सौंदर्य का निरीक्षण किया करते । सौंदर्योपासक तो दो सुंदर नेत्रों को ही देखकर मुग्न हो जाते हैं, फिर भला जहाँ इतनी बड़ी तादाद में खूबसूरत आँखें देखने को मिल जायें, तब तो कहना ही क्या है ! हमारे आँखें सदा रात को ताराओं पर जाकर पड़ती हैं, इसका कारण अब मालूम हुआ है । हमारे नेत्र अपने सहजातियों को देखकर प्रसन्न होते हैं और प्रेमवश बार-बार ऊपर ही देखते हैं ।

मोहिनी मछलियाँ

कहियत सरिता मीन ही, जाल कैसावत लोग ;

तिब मुख सरिता मीन युग, पै फौंसै सब लोग ।

हम देखते हैं कि कुछ लोग नदी के जल में जाल लगाकर मछलियाँ पकड़ते हैं । इन बेचारों को अपने इस पेशे में बड़ा दुःख होता होगा । पहले तो जाल बनाना, उसी को बहुत समय और परिश्रम चाहिए, फिर उसको ले जाकर नदी के किसी ऐसे स्थान पर, जहाँ खूब मछलियाँ हों, छोड़ना । तदुपरांत धैर्य रखकर परमेश्वर के आसरे घंटों तक बैठे रहना । जब इतनी मुसीबत चढ़ाई, तो कहीं दो-चार मछलियाँ हाथ लगें । फिर इस पर भी मुसीबत यह कि इन मछलियों का हाथ-आना अनिश्चित है ; कभी दो-चार हाथ लग गई, तो कभी एक भी नहीं; क्योंकि पकड़नेवाले कोई ईश्वर के घर से ठेका तो ले ही नहीं लेते, कि निश्चित संख्या में मछलियाँ मिल जायें । कभी-कभी यह भी होता है कि चतुर मछलियाँ जाल के फाँस में आती ही नहीं और कड़े-कड़े आकर भी निकल जाती हैं । मतलब यह है कि बेचारे धीवर को मछलियाँ बड़ी तकलीफ से नसीब होती हैं ।

परंतु धरा गौर कीजिए । कविजी ने कड़ी खोज के बाद पता लगाया है कि त्रिपद्मविरूपी सरिता में, जिसमें प्रेम-जल अगाध परिमाण में भरा है, पक्षुरूपी दो ऐसी पतुर मछलियाँ रहती हैं, जिनकी कार्यवाही देखकर अकल दंग हो जाती है । फर्हीं तो कुछ धीवरों का यह काम था कि मछलियाँ पकड़वे, परंतु यहाँ तो उलटो माया हो गई । प्रेम-सलिलपूर्ण नद में रहनेवाली इन दो ही मछलियों ने समस्त ससार के मनुष्यों को फँसा लिया । और, फँसाया भी किस अजीब ढंग से ! क्या कोई जाल फैलाया, क्या कोई अच्छड़ी जगह ढूँढी, जहाँ शिकार प्रचुर परिमाण में हो, क्या इनको भी घंटों ईश्वर के आसरे बैठे रहना पड़ा, क्या इन्होंने भी अपने कार्य में परिश्रम किया और मुसीबतें उठाई, और क्या इनके प्रयत्न का भी परिणाम अनिश्चित रहा ? नहीं-नहीं, ऐसा समझना तो भारी भूल होगी । जाल को जरूरत नहीं—इनकी बिना जाल समस्त जगत् को इस लूँघी से फँसाना आता है कि फँसे हुए का निकलना मुश्किल हो जाता है । अच्छा स्थान कौन हूँ, यहाँ तो अपने आप ही खिंचे हुए सब लोग शिकार-रूप में आ उपस्थित होते हैं; इनको शिकारी के चंगुल में फँसने में ही आनंद होता है । घंटों बैठकर बाट जोड़ना तो दूर रहा, एक पल-भर में ही यहाँ तो लाखों मन फँस जाते हैं । ईश्वर के आसरे

की बात तो दूर रही, यहाँ तो दावे के साथ सब कार्य होते हैं, ईश्वर का इस मामले में दखल नहीं है। इन दो मछलियों को तो सब संसार को फँसाने में कोई प्रयास नहीं होता। उलटा आनंद होता है। इस पर भी तुराँ यह कि यत्र का फल निश्चित होता है। निश्चित संख्या से ज्यादा भले ही फँस जायें, पर कम की संभावना नहीं।

धन्य, कविजी महाराज, आपने तो यह खोजकर संसार का बड़ा उपकार किया है। आजकल का जगन् कृतज्ञ नहीं, नहीं तो निश्चय ही आपको कोई-न-कोई ऊँचा और सम्मानित पद मिलता। आपका यह संदेश हम सबको सुनाकर कह देते हैं कि भाई, सावधान रहना, घरना बचाव होना मुश्किल है।

घड़ा व्यापारी

तिया रूप बाजार में, सरे बिकन बिन दाम ;

नैन होई बिच बटखोर, बड़ व्यापारी काम ।

सत्य है, भला रूप-बाजार में खरीदने जाकर कौन नहीं बिका ? फिर जहाँ कामदेव-जैसे व्यापारी हैं, जो यदि खरीदार कुछ न खरीदें, तो धनुष-बाण लेकर उन्हें मारने तक को तैयार बैठे हैं ; और यदि बिकनेवाले बिकना न पावें, तो उनका भी यही हाल होता है । परंतु इसमें बेचारे काम-व्यापारी का क्या क्रसूर है । वह तो इस रूप-बाजार का सबसे घड़ा व्यापारी है, और बिना दाम लिए-दिए ही खरीद व फरोख्त करता है । इसमें शलती है तो खरीदने और बिकनेवालों की । यहाँ तो लोग बिन दाम ही माहकों के हाथ बिक जाते हैं और चलते चन्हीं को कुछ पेशगी देते हैं ।

और मुन लीजिए; तौलने के लिये घाँट कैसे अच्छे और टकसाली हैं । इनसे तौला जाकर कोई कम या ज्यादा नहीं चल सकता । पूरी-पूरी तौल जोय होती है, सब कहों सौदा होगा है । परंतु सौदा पसंद आने पर तो माहकजी स्वयं सौदा हो हैं, और रूप के सौदागर के हाथ चलता कुछ गाँठ का देकर

बिक जाते हैं। कभी-कभी तो व्यापारी के बाँटों को देखकर ही खरीदार झट्ट हो जाते हैं और सब कुछ भूल जाते हैं। फिर जो कहीं इनके बाँटों से वे बाँट मिल गये, तो आनन्द की सीमा नहीं रहती, जिसे वे बाँट, खुद-ब-खुद, बात-की-बात में बोलकर बता देते हैं।

यह सदा युरा है—इसमें सबको बड़ा लगता है—कभी खरीदारों की मरम्मत बनती है, तो कभी येचने-विकनेवालों की इजाजत ! यहाँ तक पता नहीं रहता कि किस वक्त कौन बिक जाय, और कौन खरीद ले। व्यापारी लोग इस क्रिस्म के व्यापार से चकर ही चले।

सम्मान के साधन

इन नयनों के रूप को, कहें ली करो बगान :

इन्हें कविता कामिनी, पावन है सम्मान ।

“इन नयनों के रूप का कहाँ तक वर्णन करें । कविता और कामिनी इन्हीं के कारण आदर पाती हैं ।”

सत्य है । इन नयनों के अनुपम रूप का वर्णन करना कठिन है । कारण कि—“गिरा अनयन नयन विनु पानी ।” दरभमल बड़ी मुसीबत है । कामिनी की शोभा उसके गुंरा नेत्र हैं । यदि ये न हों, तो उसे कोई फूटी आँख में भी न हों । एक नेत्रों के बिना उसका माग रंग-रूप भूल में मिल जाय । नेत्र म्रियों के हथियार हैं । जब चिन्ता के हथियार दिन गए, फिर क्या है, फिर उसमें कौन होगा ? हरना तो दूर था, कष्टिक लोग उसे और खबरदानो हगदोंगे । नेत्रों के बिना नायिका के प्रिये अपने जन्म-सिद्ध स्वयों की रक्षा करना भी कठिन हो जायगा । बिना हाँवों के कमान किम काम की । और और ये ऐसे कि—“बल विन केथन युद्धन नाई ।” ये वे हथियार हैं, जो—“बल नई बूटें नहीं, करन साय में बाँट ।” फिर भला इनकी इदर क्यों न होंगी । इमकी नाईर वे लोग होंगे, जो

मैदानेजंग में इन हथियारों से जखमी हो चुके हैं। जख्म भी इनका ऐसी-वैसी दवा से नहीं भरता।

नैन बान के घाव को, एकहि कथो उपाव ;

भुज पही कुच पोटला, अधरन को सिक्ताव ।

चाहिए उस जख्म के लिये ।

अब रही कविता। सो यह भी तब तक शोभा नहीं देती, जब तक कि इसमें आँखों का वर्णन नहीं पाया जाता, अथवा यों कहिए कि भाव-रूपी नेत्रों से ही कविता-कामिनी की कमनीयता बढ़ती है। अमिय, हताहल, मद भरे नेत्रों पर दो लाइन का एक छोटा-सा दोहा कवि को अमर बना देता है। फिर नेत्र ही वो नेचर-निरीक्षण करके हमको नूतन और नायाब भाव नजर करते हैं, और सदा हमारे रिक्त भंडार को उनसे भरते हैं। सारांश, नेत्रों के बिना कविता और कामिनी दोनों की कमनीयता में कमी आ जायगी।

प्रेम-प्रकाश

जे नहीं सघोत जो, निशि में इत उत घात ;

आँख बियोगिनि पतिन को, जई-सई हूँन जात ।

ये जो रात्रि में इधर-उधर उड़ रहे हैं, सो सघोत नहीं हैं। वो क्या हैं ? ये तो बियोगिनी स्त्रियों की आँखें हैं, जो जहाँ-वहाँ उनके पतियों को ढूँढ़ रही हैं ।

बियोगिनियों ने पतिर्या को ढूँढ़ने की अंत में अच्छी तरकीब सोची है। वास्तव में आँखों से बढ़कर ढूँढ़ने का काम कौन कर सकता है, क्योंकि मुमकिन है कि कोई दूसरा तो पहचानने में भी भूल-चूक कर दे ! परंतु आँखें तो ऐसा निशाना लगाया करेंगी कि पति महाशयों को, जहाँ फही होंगे, लाखों में से ढूँढ़कर निकाल लाएँगी। और क्यादा अरसा गुजर जाने से यदि कोई पति घर का रास्ता भूल जायगा, तो उसको राह बतला देंगी। एक और फायदा है। रात के समय ये आँखें मसालों का भी काम देंगी करना अँधेरे में कोई पतिदेव किसी गड्ढे में गिर जायें, तो बड़ी मुश्किल हो जाय। एक बात यह भी है कि किसी दूत के संग संदेश भेजने से पति न भी आते। दूसरे यह भी था कि ब्राह्मण नायिका की विरह-व्यथा का धरुन करने में समर्थ न होता।

आँखों के इस काम को अंजाम देने से इस तरह की कोई कठिनाई नहीं रही। आँख से बढ़कर भला नायिका की विरह-वेदना नायक को कौन सुना सकता है। इसके अतिरिक्त आँखें अपना प्रभाव भी उन पर डाल सकती हैं। भला जो आँखें पतियों को इतनी प्यारी हैं, वे खुद कष्ट पाकर अँधेरी रातों में ढूँढ़ने निकलें और पति न आवें यह तो कभी संभव ही नहीं। जब उन सजल नेत्रों को पति देखते होंगे, तो मामूली तो क्या बड़े मानियों के मान बढ़ जाते होंगे।

इस दृष्टि वियोगिनियों ने यह ऐसा दूत ढूँढ़ निकाला है कि बस यह समझ लीजिए कि उनकी विरह-व्यथा भविष्य में बहुत कम हो जायगी। हाँ, बेचारा विरह मारा गया। उसका अब इतना भय नहीं रहेगा। सच है—“काऊ के रहत न कभु सब दिन एक समान।” मौजूद है, इतने दिनों तक विरह की खूब चली थी। अब वे हवा खावें।

शिकारी की शिकार

का गंदे बदन कमजोर, पैना कानन जग है ;

बेने बने दे जग, मृग बने मारा मृगन को ।

ये नर नटगट शिकारी नैन, कटाक्षरूपी अनैन तीक्ष्ण
बाण और धू-रूपी कमान को लेकर कानरूपी वन को जाते
हैं । लीलाप, यद और मुनिप—कानन को जाकर ये शिकारी
मृगों को घोंगा देकर मोहित करने के लिये छुद ही मृग बन
जाते हैं । मृग बेचारे उनके असली रूप को न पहचानकर मन्त्र-
मुग्ध की तरह इन नथागतुओं की ओर टट्टकी लगाकर
देखने लगते हैं । परंतु फिर भी माया-ज्ञान में कैसे ही रहते
हैं, और शिकारी को शिकार करने का पूरा-पूरा अवकाश देते
हैं । वे अचभे में आकर इधर-उधर देखते हैं, परंतु समस्त कुं
काम नहीं करती । इतने में शिकारी इनका काम तमाम करते
इनको अपने साथ लेते जाते हैं ।

यही हाल हमारे युवकों का होता है । वे मृग-जैसे नायिका के
नेत्र देखकर उन पर मोहित हो जाते हैं और कटाक्ष बाणों से
बिंधकर भी नहीं टलते । उन्हें घायल होने में ही मजा मिलता है ।

स्वर्ग का सुख

लाज भरे रति रंग रंगे, स्वर्गानन्द सो पुर ;

जो निरगुन ऐसे नयन, केलि-कला में मूर ।

लज्जा से भरे हुए, प्रेम के रंग में रंगे हुए और स्वर्ग का आनन्द जिनमें भल्लकता हो, ऐसे सुन्दर नेत्रों के दर्शन वन्हीं भाग्य-शाली और पुरुषों को हांते हैं जो केलि-कला में कुशल हांते हैं ।

यह रति समय की औरों का वर्णन है । स्त्री में वैसे ही लज्जा होती है, फिर रति के समय का तो कहना ही क्या है । लज्जा का होना स्वाभाविक ही है । प्रेम तो है ही, बिना प्रेम के मिलन ही कैसे हो सकता है, नायक रति-रीति में बड़ा प्रवीण है । अतः नायिका नायक के साथ स्वर्ग का सुख भागती है । चली स्वर्गीय सुख का सुखद कोटो नायिका की आँखों में दीप्त पड़ता है । एक तो नारी के नेत्र वैसे ही सुन्दर होते हैं, जिस पर चनमें लगता मरी हुई है, प्रेम में पगे हुए अलग हैं, और यहीं पर छावमा नहीं हुआ है, बल्कि स्वर्ग के सुख से पूरित हैं । वास्तव में ऐसे अनूठे नेत्रों को देखने का अधिकारी वही पुरुष हो सकता है जिसने केलि-कला युद्ध में अपनी शूरवीरता का परिचय देकर विजय प्राप्त की है ।

कर दिया । नेत्रों के चमकीलेपन और सौंदर्य की सीमा न रही । वे ही मनुष्यों के सय अंगों से सुंदर गिने जाने लगे । ऐसे क्यों न होते, उन्होंने तो अंग-प्रत्यंग को पालन और पोषण करनेवाले मुखराज की मदद की, और उनके कष्टों को काटा । यदि इस पर भी मुख उन पर विशेष कृपा न रखता और उनका सबसे ज्यादा सम्मान न करता, तो यह उस मुख की मूर्खता गिनी जाती ।

मुख ने इन्हें इतना तत्त्व प्रदान किया और इन्होंने इतना रूप-रस पिया कि इनमें से भी रूप-रस टपकने लगा । इन्होंने जो रस टपकाया, वह मधुरता में अमृत से कुछ कम न था । इससे बहुत-से लोगों की तृप्ति होने लगी । चारों ओर प्रेम-रस का प्रवाह बहने लगा ।

हमको इन नैनों का बड़ा कृतज्ञ होना चाहिये, क्योंकि इन्होंने परोपकार के लिये ही इस जगत् में जन्म लिया, और स्वार्थ को लाल में रखकर जितना रस स्वयं पिया, उससे सहस्रगुना ज्यादा पिलाया । धन्य है, ऐसे निःस्वार्थ परोपकारियों को !
अप्य के उपकारियों का अपकार करनेवाले और मददगारों को मारनेवाले कृतघ्न इनसे सबक सीखें ।

काम के कमल

४१ पुष्प नैरुप मनसु, प्रेम-प्रलापपर ;

किपे नन दुः कमल दे, कन्द किङ्किन मर ।

कामदेव की कारीगरी और कला-शौशल का कथन यहाँ तक करें। उसने कौन-सी ऐसी चीज बनाई, जिसे देखकर लोग पाद-पाद न कर उठें हों। एक कमल-नामक कोमल औंजार लेकर, कमल का मसाला लेकर और कमल ही को नमूने के तौर पर रखकर उस काम-कारीगर ने क्या न कर दिखाया। इसी एकमात्र सामग्री से उसने कर्णकमल, करकमल, मुखकमल, नैनकमल, कुचकमल, पदकमल इत्यादि इत्यादि अनेक अनूठे आविष्कार सयकी आँखों के आगे कर दिखाए।

इस काम-कारीगर के कर की करामातों में से दो कोमल-से कोमल कमल लेकर कामिनी के कान बनाने की करामात ही को कविजी यहाँ फँद रहे हैं। कांता के दोनों कमनीय और कोमल कान इस प्रकार दिखाई देते हैं, मानो वे प्रिय प्राणपति के प्रेम-प्रलाप के संपुट हैं, जिनमें प्रेमप्रलाप-नामक रत्न बड़े यत्न के साथ रक्खा जाता है, और कभी प्रकट नहीं किया जाता। या वे ऐसे मालूम होते हैं, मानो मदन ने दो सुकोमल, सुगंधित, मुंदर

गों को उपयुक्त स्थान समझकर, उन पर, भूलकर भटकने-
ले राहगीरों को राह दिखाने के लिये दूर-दूर तक प्रकाश
दानेवाली दो भण्डियाँ रख हो दीं। अब भी यदि पथिकों
पथ न मिला तो उनके दुर्भाग्य का दोष है।

मदन का मोह

कुच बीलहि माली मदन, निशि में तौरन चाहि ;

बीलपत्र शिव सिर चढ़त, समुक्ति दिए सकुचाहि ।

इचरत मदन माली का वेश बनाकर रात के समय चोरी की तरह कुचरूपी बील-फल को तोड़ने जाते हैं । परंतु जब यह खयाल होता है कि यह उसी वृक्ष के फल हैं जिसके पत्र श्रीमहादेवजी के सिंग पर चढ़ते हैं, तब उन फलों पर राक्ष की कृपा समझकर और 'मदन-बहन' की याद करके, नानी याद आने लगती है, और पेट में छठी का दूध तब भी पचता । हृदय में बड़ा भय और संकोच होता है ; परंतु आठहरे चोरों और डकैतों के सरताज—भला इतने ऊँचे टाइटिल होल्डर होकर कहीं काम में बिना हाथ बाते रह सकते हैं । उन्हें चाहे सकलता हो या न हो, परंतु पदले ही हिम्मत हाथ देने से उनकी सात पीढ़ी तक समिन्नता न हो जायें । मन में लालच भी है, और यह जानकर कि रात्रि में माली के बेरा में उन्हें क्यों पहचानेगा, कुछ पैसों भी है । सो ! आपने हिम्मत करके क्यों-क्यों हाथ तो बड़ा ही दिशा । परंतु दूध आखिर निगल हो ; शिवजी की कृपा से बीज तो मरी दूटा, किंतु मनासिज का

न ही टूटा । पहले ही यदि यह सोच लेता कि महादेव-जैसे
 कालज को घोसा देना असंभव है, तो क्यों इतना दुःख
 खाता । परंतु वाह-वाह ! बंभोले भी बड़े कृपालु हैं; उन्होंने
 अपने कृपा-पात्र वील-फलों पर मदन का इतना मोह देखकर
 फलों को तोड़ने-क्रिया में ही इतना अनुपम रस प्रदान कर
 दिया कि उसे उन्हें तोड़ने की इच्छा तक न रही । वह नित्य
 उन्हें देखकर ही अखंड आनंद का अनुभव करने लगा ।
 वील-फल का बड़ा शौकीन मालूम होता है, नहीं तो उनके
 अपने अपनी जान तक जोखिम में क्यों डालता ।
 पाठक ! यदि विश्वंभर को प्रसन्न रखना है, तो आप इन फलों
 तोड़ने का कभी व्यर्थ प्रयास न करें ; जहाँ तक हो सके
 वे वचकर ही चले—इन्हें देखें तक नहीं—नहीं तो, लेने
 देने पड़ जायेंगे । शंकर हमेशा तो भंग के नशे में रहते
 नहीं, जो मदन की तरह आपको भी माफ कर देंगे ।

प्रेम-पयस्थिनी

गिर के वाहन प्रेम की, बहान कीच जलवार ;

उरज लाहि के मनहु दे, ऊंचे अगम करार ।

कवित्री के कल्पना-राम्य की भूमि को खँवर बनाती हैं। साधन-माशों की परपराइट करती हैं, गहरी नदी बह रही है इसका नाम प्रेम-नदी है । और-और नदियाँ बर्या खुद मैली होकर रजःस्वला हो जाती हैं; परंतु यह नदी तो 'प्रेम के वाहन प्रेम-जल' से ही बारहों महीने भरी रहती है । ज्यों ज्यों जलशुद्धि होती है, त्यों-त्यों शुद्धि होती जाती है । इस प्रेम-महानदी से गहरी नदी राखद ही संसार में और कोई हो । न जल से ओतप्रोत भरी रहने पर भी निर्मल है । मल तो इसे छू तक नहीं गया । बलिय पाठक ! हम भी इस नदी में स्नान करके अपने पापों को बहा दें, और कवि को धन्यवाद दें । यह तो मानी हुई बात है कि नदी जितनी ही ज्यादा तेज चलेगी, उतना ही करारों को काट-काटकर ऊँचा बनाए जायगी । फिर जो प्रेम-नदी का प्रवाह तो ऐसे ऊँचे करारे बनाता होगा, जो बेचाँ दूसरे लोगों को तो क्या—'कावनामप्यराम्यम्' हैं ।

नायिका के ऊँचे छठे हुए कुछ ही मानों इस नदी के दो

आश्रयहीन के आधार

जिब ब'के हीर आधार में, दूधन मन मेंकर ;

तनछन बाको देखि निधि, किर दुबनि आधार ।

दस इन्द्रियों में शरीर बना दे, और मन इन्द्रियों का राजा दे । फिर, यदि राजा ही दूध गया, तो प्रजा के दूधने क्या बाकी रहा ? प्रजा-पति भाँटि पड़-पड़कर छोड़ता है परंतु ये उसी के बनाए हुए, स्त्री के शोभारूपी सागर में डूब जाते हैं । यह देखकर वह हेगन हुआ, परंतु दोनों में से एक को भी उसने नष्ट न किया, क्योंकि दोनों ही उसकी सृष्टि थीं । करोड़ों इसी तरह से तड़फ-तड़फकर इस अथाह क्षवि-सागर की तरल-तरंगों के बीच में डूबने लगे, परंतु विरि को कोई उपाय नहीं सूझा । मालूम होता है, उन्होंने अंत में द्वारकर कामदेव की सहायता ली । काम महाराज तो पहले से ही पुराने घाघ थे ही, आपने तुरंत राय दी होगी—“इस समुद्र में दो ऐसे आधारस्वरूप पर्वत बना दीजिए, जिनमें इसका सौंदर्य भी बढ़े, और बेचारे तारीखों के मन भी न डूबें ।” विधाताजी आपकी चाल में आ गए और कुव-रूपी दो आधार बना दिए ; परंतु यह नहीं जाना कि यह

गुरु घंटाल मदनराज की बाल है, जिससे पहले मुरिकल से दूबनेवाले मन अब सहज ही में दूब जायेंगे । पहले इस समुद्र से दूर भागनेवाले मन भी अब इन आधारों को देखकर मोहवश चकर में आ जाते हैं । बेचारे नशा की समझ में कुछ नहीं आया; किया तो भले के वास्ते, हो गया और भी बुरा ।

प्रेम-गणोपर

बिन कचूँद नगि हयम दिव, राधा प्री बन भाई ;

मेदनील नर कमल वा, उमड़ि मारि अनु आई ।

राधा माधव कदो पदार्थ में निने हैं । सत्ता निवारणार्थ अथवा
प्रेमावेश में राधाजी हरि के हृदय में लिपट गई हैं । वसी सन
की उनकी निरासी कुच-रोमा का वर्णन कवि ने किया है ।

क्या कभी आपने किमी का यमुना में स्वर्ण-पट मारे
देखा है ? यदि नहीं, तो थोड़ी देर के लिये कल्पना ही
कर लीजिए । पनरयाम का रयाम हृदय बड़ा विराल है, और
यमुना के पाट की माँति मात्तम होता है; अतः उसमें रस
रहना प्राकृतिक ही है । कवि ने उसे स्नेहरूपी नीले जल
का नद ही माना है । राधाजी के कचुकीरदित कुच, रंग,
धमक-धमक और आकार से, सोने के बड़े-बड़े पड़े ही
प्रतीत होते हैं । कुछ-कुछ चलटकर पड़े का मुख जल में
लगाने से पदा भरा जाता है । राधाजी भी प्रेम-मद में
मस्त होकर कुछ झुककर खड़ीले जैल की छाती से लगी हैं ।
जस देखनेवालों को प्रत्यक्ष यही मात्तम होता है, मालों
वे अपने कुचरूपी कमल-कलस कुछ-कुछ चलटकर, कृष्ण

के प्रेमरूपी नीले जल से भरे हुए हृदयरूपी नद में भरती जा रही हैं ।

परंतु हमें तो यह आश्चर्य है कि राधाजी को प्रेम-जल भरने की क्या आवश्यकता थी ! स्नेह-सलिल तो स्वतः उमड़कर उनके कुच-कुंभों में भर आया होगा । और वे उसको नटवर के नेह-नद में अपने घड़े चलटकर मिला रही होंगी ।

राधाजी को प्रेम-जल में घड़े भरते देखकर हमारे कविजी को भी ईर्ष्या हो आई, और उन्होंने भी कल्पनारूपी सागर को अपने दोहेरूपी गागर में भर दिखाया । फिर कहाँ तो राधाजी का सागर में गागर भरना, और कहाँ हमारे कविजी का गागर में सागर भर दिखाना !



कामिनी में कनक-कलश

मन कचुकी ओर तिर, कुन इति गोमा पदे ।

विमल वसुन्धरन वनक-पद, वन-वन दूषन मदे ।

दिया की नीने रंग की कचुकी की मानो यमुना का निने
और नीला उस है । उस कचुकी में से बमके सुंदर, सुपर
और बमकीने कुछ इस प्रकार शोभा देने हैं, मानों उड़भरते
समय छिमी सी के हाथों से छूटकर मोने के पदे यमुना-उर
में कुछ-कुछ डूबते जा रहे हैं ।

मगर पाठकी ! इन पदों के मरोने आप नारी के नंद-
रूपी नद में न कूद पड़ना, आप देख चुके हैं कि ये डूबते हुए
पड़े हैं । अतः आपको भी साथ ले डूवेंगे । आप इनका
सहारा सकते हैं । मगर वे क्या सहारा देंगे, उन खुद की
जान आकृत में है । वे तो खुद डूबते हुए की नई दूसरों
का सहारा उक रहे हैं ।

नयन-नैया

सागर रूप अपार में, नयन-नाव टकरादि ;

कुचगिरि पै दीपक बरत, तक साहि दिशि जाहि ।

खी का सौंदर्य अपार और अगाध सागर के सदृश है । इसकी शोभारूपी तरल तरंगों में पड़कर रसिकों की नयन-रूपी नाव इधर से उधर टकर खाती फिरती है । समुद्र में जगह-जगह चट्टान और आवर्त हुआ करते हैं, जो नावों को नष्ट कर देते हैं । समुद्र के किसी भयानक स्थान पर, जिस प्रकार कोई परोपकारी यात्री अन्य यात्रियों को भय से सावधान कर देने के लिये 'लाइटहाउस' बना देता है, उसी प्रकार यहाँ इस तूफानी सौंदर्य-सागर में पड़कर दुःख पाए हुए अनुभव-शील यात्री विधि ने कुच-गिरि को ऊँचा स्थान जानकर उसकी दो छोटियों पर चूचिकाओं के रूप में दो दीपक ऐसे जला दिए हैं, जिनकी ज्योति अखंड है । जिससे भूले-भटके भोले यात्रियों को मालूम हो जाय कि इन पहाड़ों के बीच का समुद्र अत्यंत भयंकर है; वहाँ पर बहुत-से भँवर पड़ते हैं, जिनमें पड़कर नयन-नाव चकर लगाने लगती है, परंतु आगे नहीं बढ़ सकती; और अंत में वेग से दोनों पहाड़ों की

पवन उड़कर जाकर दूर जागो है । बेपारे यात्रियों को
इसी तरह मुग़ल में जान जागो है । इसी बाने में
यम परीक्षार्थी यारी ने वहाँ 'वाम-हो-वाम' की 'जादू-
हावम' बना लिए हैं, ताकि दूर ही से इनको देखकर
पवित्रमाला अपनी-अपनी मोहों को बचाने का प्रयत्न करें।

परन्तु पाठक ! आगको यह सुनकर आश्चर्य और मो-
होगा कि बेपारे जेमे पुण्यआत्मा उदार पुरुषों का यह प्रयत्न कि-
युक्त निष्फल होता है । बचाने के बजाय ये दीपक तो यात्रियों
को समेटे पैमाने में सहायक होते हैं । क्योंकि जैसे दीपक को
देखकर पतंग अपनी मृत्यु को कुछ ठिक न कर, अपने को
तरह, बसकी चमक-दमक पर लटू हो, उसमें गिरकर उड़
भरते हैं, वैसे ही ये नयन-पथिक भी जब इन कुच-स्थानों को
देखते हैं, तो इनकी सुपरता, दृति, आभा और सौंदर्य पर
मोहित हो, मंत्र-मुग्ध की तरह इनके बीच में आ फँसते हैं ।
फिर जीवन से हाथ धो बैठते हैं । भलाई के वास्ते किया
हुआ यह काये बुराई का साधक बन जाता है । इससे तो
अच्छा यही था कि दीपक रखने का कृपा प्रयास ही न किया
जाता । क्योंकि तब तो वन्हीं को इस दुर्दशा का भया बखना
पड़ता, जो भूल-भटककर वहाँ पहुँच जाते । परन्तु अब तो
इन दीपकों की दमक में, शृंग की सुंदरता को देखकर कई

दोनों ओर से सीमा का उल्लंघन हो गया । दोनों का प्रेम इस प्रकार एक दूसरे में समा गया कि 'दो कालिय एक जान' हो गए । दोनों ने दिल भरके केलि की । प्रेमावेश में नायक ने नायिका के कूल की पंखुड़ी-जैसे कोमल गात पर, जो नख-क्षत बना दिए थे, वे दिन में विचित्र छटा दिखलाने लगे । कविजी ने उनके लिये एक उपयुक्त उत्प्रेक्षा की है । प्रेमावेश के फल-स्वरूप वे नख-क्षत, पत्र-सदृश नायिका के सुकोमल और स्निग्ध शरीर पर पड़े हुए, दिन में मानों स्वर्णाक्षरों की तरह शोभा देते थे । रात की प्रेमदानलीला की, भविष्य के लिये, एक छासी सनद मौजूद थी ।

प्रेम-दान-पत्र

रत्न केनि हिय दीय मग्न, नग्न तन दिन हिय मोहरे ।

दानपत्र का प्रेम दे, देवान्दर मनु होरे ।

काम का आवेश भी ग्रस्य करता है । इसमें तो मनुष्य ऐसा पौरा जाता है कि जिम वस्तु को वह अपने हृदय से पयाश प्रिय समझता है, उसी को सति पहुँचाते हुए मन पुण्य भी संकोच नहीं करता । संकोच का तो सवाल ही नहीं है; वह तो बेचारा अपने आवेश में ही इतना मस्त रहता कि अपने प्रिय के हानि-लाभ का उसे विचार तक नहीं रहता । सच है, मदन महाराज के प्रेम-साम्राज्य में सभी व्यापक अनोखे हैं । उनके औचित्य-अनौचित्य का विचार करना भारी भूल है ।

छैर, सुनिए, हाल यह हुआ कि नायक और नायिका का बहुत समय के बाद मिलन हुआ । बेचारे विरह-वेदना से व्यथित थे । अब भी अपने वास्तविक प्रेम की सीमा के अंदर रखने की कोई सलाह दे, तो सरासर अन्याय है । और यह हो भी कैसे सकता है । अस्तु । मिलन-दरय वैसे ही जोरा का रहा, जैसे सरिता का समुद्र के साथ समागम होने पर रहता है ।

और मनाल सरसिअ लेकर सहज ही में दिगुक्ति कर
दिय हो ।

पाठक ! इन कमलों की मित्रता को दूसरे कमल तरसते होंगे ।
देखते नहों, कभी-कभी नीसोंतल लाकर उनमें बार्तालाप कर
आते हैं ; जैसे अपने बरस के वयपदाधिकारी के पास उस बरस
के बहुत-से लोग बारहूमी करने जाया करने हैं और अन्यान्य
मन्त्रों की नूटनूठ चुगली तथा शिकायत किया करते हैं ।
भावम होता है, नीचे कमल इन्हीं लोगों की श्रेणी में से हैं ।
ये कर्ण कमलों को मिला देते होंगे कि दूसरे साल, बीज और
खेत कमल तो आपकी समझ करना चाहते हैं । कर्ण कमल
भी इनकी बात मानकर और धोम्ये में आकर इन्हीं की
नित्य अपने पास रखते हैं । उन्हें चाहिए कि बेचारे दूसरे
गरीब कमलों की भी बात सुनें और सत्य-भूट का निर्णय करके
जो चाहें करें । पक्षपातरहित होना ही यहाँ की शोभा
देता है ।

कामिनी का रूप

माया कवि तजो नित, माय-कूप नृप ।

मन जगत् नैव जेते एते, धमन न जिमै तेव ।

कूप में गिरना कोई मंन नहीं है। वहाँ तो, जो गिरते हैं, जगत् में ही कड़े पीछे निम्नानवे शिखी में हाथ पों बैठते हैं। परतु आप कहेंगे कि क्या बुद्धि कोई जेम्मे मपावनो राखसी है कि त्रिशमे बचना सारंग्या मुरिकल है। आरका हज बजा है। कुंर में बचना बजा, सरस है। जरा-सी सावधानी—वैतन्यका की पहरात है; फिर तो कोई कर नहीं। परंतु पाठक ! हमारा से कर्ज है कि किसी अक्षरय मय से आपको सावधान कर दें।

मुनिप, श्री-सौंदर्य-संसार में एक अनूठा कूप है। पर कूप ऐसा-वैसा नहीं कि साधारण नियमों का पालन कर उसने छुटकारा पा जायें। यह तो माया-निर्मित है। उसके कोसों दूर-दूर तक का स्थल ऐसा सुंदर और मनोहारी है कि संसारी जीव उसके आकर्षण से नहीं बच सकता। आखिर विहार करता करता उसके पास ही पहुँच जाता है। फिर तो ऐसी गुदगुदी, धमकीली और बिकनी ढालू धमीन आती है कि कितना ही बचाव क्यों न करें, पैर रपटते-रपटते उसी माया-कूप में गिरने

पुलिस में नौकरी करनेवाले, औरों का तो धिक्क ही क्या है, खुद अपने आपको मुकदमों में फँसा लिया करते हैं। इनको रात-दिन सबक ही ऐसा दिया जाता है। इनका विश्वास करना अच्छा नहीं है। इसलिये तू पहले से सँभल जा। कदाचिन् तुझे यह खयाल हो कि ये लोग तुझे नारी सम्मत्कर छोड़ देंगे, तो तू सख्त गलती करती है। वह जमाना गया कि जब स्त्रियों के साथ रू-रियायत का बरताव किया जाता था। आजकल ताजीरात हिंद और जाव्वा फौजदारी की तूती बोल रही है— आजकल ये ही हमारे धर्मशास्त्र हैं। मनुस्मृति का अब यहाँ मान नहीं है।

धेम-धहरी

बनो दीन धातु धरे, धन धन धन धन ;

धन धन धन धन, धन धन धन धन ।

हैं न्यायिका ' तू इस बेमार के मोती को इस तरह बने
 माक का बाज न बना । जमी मे सावधान हो जा । इसे इस
 सिर मग बढ़ा । मक्का, बद मी कोई बाल हुई कि बद होने
 मेरे जघरो पर ही सटकना रहता है और तेरे मुख से एक-एक
 शब्द को निच्छक्य है, उसको नोट करता है । तेरी हर एक
 हरकत को देखता रहता है । देखिया स्वभाव से ही बड़ी मोती-
 -माली होती है । अतः पुरुषों की चिकनी-चुपड़ी बातों में जा
 जाती है और इस प्रकार अपने हाथों से अपना ही सत्यानाश
 करती है । बाबरी ! यह मोती कामदेव का मेजा हुआ परे-
 वार है, जो रात-दिन तेरा पहरा देता है और तेरी एक-एक बात
 को नोट करता रहता है । तू इसको इतना साह-म्यार करती है
 किंतु इसका मौका लगते ही यह तेरी मूठी-मूठी शिखरों
 करेगा ।

क्या तू नहीं जानती है कि पुलिस में नौकरी करनेवाले
 मुख्य अपना कर्तव्य पालन करने में बड़े पक्के होते हैं ।

पुलिस में नौकरी करनेवाले, औरों का तो चिक ही क्या है, खुद अपने आपको मुकदमों में फँसा लिया करते हैं। इनको रात-दिन सबक ही ऐसा दिया जाता है। इनका विश्वास करना अच्छा नहीं है। इसलिये तू पहले से सँभल जा। कदाचिन् तुम्हें यह खयाल हो कि ये लोग तुम्हें नारी समझकर छोड़ देंगे, तो तू सरल रहती करती है। यह जमाना गया कि जब बिरों के साथ रू-रियायत का चरताव किया जाता था। आजकल वाजीरात हिंद और जाब्ता कौजदारी की तूती बोल रही है— आजकल ये ही हमारे धर्मशास्त्र हैं। मनुस्मृति का अर्थ यहाँ मान नहीं है।

विचित्र मैत्र

मदुर और क रस मरे, मय मय य मय ।

य मय मय मय मय, मय को मय मय ।

इन कोमलता ने वाग्म (kiss) के द्विजोर्मियों को मोह कर दिया । वे प्यारी भोजी-भाजी देखी को धोखा देकर अपना चम्पू मीठा करना में मूढ़ जानने हैं । यम कागको गुणगुणें मुक्तादिशा करमाश्रय । आव करमाने हैं—“ये और कैसे निदुर है । कसोती पर इन्हींने गेमी बरहमो मे डक मारें हैं कि पार हो गए हैं । रसना में रस (अमृत) रहता है । सो अपने गालों को मेरे सामने करो । मैं इन्हें चूम लेता हूँ । अभी भिन्नों में सारा जहर उतर जायगा । यह एक अकस्मोर दवा है ।”

मालूम होता है कि पीतमजी को उनकी परोपकार-वृत्ति की पोंड खोजनेवाला अभी कोई नहीं मिला है, बरना ये सारी दिक्कत भूत जाते । दूसरों का इलाज करते-करते कभी कहीं ये खुद मर्ने मील न ले लें । पीतमजी अच्छी तरह समझ लें कि द्विजोर्मिणी हमेशा काम नहीं देती है । अतः में असफलता अवश्य होती है । और फिर बड़ी दुर्गति होती है । किंतु इस वक्त पीतमजी हमारी नसीहत क्यों मानने लगे हैं । इस समय तो इनकी चालें खूब चल रही हैं ।

मुग्ध मधुप

कीमल सरस कपोल पर, तिल इमि शोभा पात ;

पा गुलाब कंटकरहित, रसिक मधुप लिपटात ।

सरस कीमल कपोल पर तिल इस प्रकार शोभा देता है, मानो कंटकविहीन गुलाब से रसिक भ्रमर लिपटा हुआ है ।

भौरे बड़े रसिक होते हैं । रस के लिये काँटों की कोई परवा नहीं करते हैं । उनको उन काँटों से बिदने में ही मजा आता है । विदग्ध-हृदय पुरुष इसके साक्षी हैं । भ्रमर ने प्रेम के तत्त्व को समझ लिया है । वह काँटों से तो डरे ही क्या, मृत्यु तक से भय नहीं खाता है । प्रेमी पुरुषों का स्वभाव है कि जान पर खेलकर भी अपने प्रेम का परिचय देने से बाज नहीं आते । ये लोग विघ्न-बाधाओं से नहीं घबराते । किंतु भाग्य से, बिना प्रयास किए ही यदि अभिलषित पदार्थ की प्राप्ति हो जाय, तो और भी अच्छी बात है । हमारा रसिक भौरा ऐसे ही भाग्यशाली जीवों में से है । इसे बिना काँटोंवाला गुलाब मिल गया है । अच्छी तकदीर खुली है । अब निरिंचित होकर पुष्पनालिंगन करे—दोनों हाथों से जी खोलकर रस लूटे ।

मुक्त मुक्ता

सफल जनम तुभ्य जग मयो, बेसर मोती मेत ।

राधा अह नैदलान के, अधरन को रस लेत ।

हे बेसर के खेत मोती ! तेरा ही इस संसार में जन्म लेना सफल हुआ है, जो तू राधा और नैदलाल दोनों के अधरों के रस का पान करता है । जिस अधर-रस के लिये कृष्ण के सदृश योगीश्वर राधिकाजी के चरण-कमलों में सिर नवाते हैं, उनके चरणों की रज अपने मस्तक पर चढ़ाते हैं और रुठ जाने पर पंखों उनको मनाते हैं, उसकी प्राप्ति बिना प्रयास ही हो जाना बड़े सौभाग्य से हो संभव है । तिस पर भी तारीफ़ यह है कि अकेली राधिकाजी के अधरामृत का पान ही नहीं, ह्वाचरत कृष्ण से भी नहीं चूकते हैं । बेचारे कृष्ण को तो यह कोरा ही रस देते हैं । जो कुछ रस कृष्ण पान करते हैं, उसको तो तुरंत ही यह उनके अधरों से घूस लेता है । फिर कृष्ण के पास कुछ नहीं रहता । कदाचित् यहो कारण है कि कृष्णजी कभी रुम नहीं होते हैं । इस बेसर-मोती की वजह से ही उनका राधिकाजी की बार-बार खुशामद करनी पड़ती है । यदि यह बेसर का मोती न होता, तो मनमोहन को इस तरह बार-बार राधिकाजी मान का डर न

बहुरंगी बिहारी

लाखि बहुरंगी रूप मिय, राधा तहँ हैसि दीन ;

दंताभा पवि श्याम वपु, घन विद्युतयुत कीन ।

प्रेम-साम्राज्य के सम्राट् भगवान् श्रीकृष्ण की प्रेम-लीलाओं को सुनकर आज किस सहृदय की आत्मा नहीं फड़क उठती ।
बेविध प्रकार से प्रेम-क्रीड़ाएँ करके प्रेम-रस का इन महाशय ने जो मजा चखाया था, आज उसको याद कर करके प्रेमियों के हृदय ललक उठते हैं । कभी गोपियों के साथ रास-क्रीड़ा, तो कभी राधा के साथ वन-विहार; कभी प्रिया के संग मूला मूलना, तो कभी जल-विहार । यही नहीं, कभी-कभी तो इनको अद्भुत लीलाएँ रचने की सूझती । कभी-कभी आप रूप बदलकर प्रियाजी के पास जाते और उनको खूब छकाते । परिणाम यह होता कि इन दोनों प्रेमियों का प्रेम अबाध्य रूप से दिन-दिन बढ़ता ही जाता ।

इस दोहे में नटवर ब्रजविहारी की इसी बहुरंगी लीला का वर्णन है । आपके मन में आई कि वेश बदलकर प्रिया के पास चलें । वेश ऐसा सजाया, चाल-ढाल ऐसी बदली कि किसी प्रकार से पोल न खुल जाय । परंतु क्या आग भी कभी कपड़े

इस बेचारे रस की तो आकृत ही समझो । कभी यह इस वर्तन में ढाला जाता है, तो कभी उस वर्तन में; लेकिन यह कसूर इन रसराज का ही है । इन्हें सोच-समझकर इन नारियों के चकर में पड़ना या । इनसे अधिक संबंध रखने से किसकी दुर्गति नहीं होती ?

५

६

बहुरंगी बिहारी

साक्षि बहुरंगी रूप प्रिय, राधा तहँ हँसि दीन ;

इंताभा पदि श्याम वपु, पन निरुतयुत कीन ।

प्रेम-साम्राज्य के सम्राट् भगवान् श्रीकृष्ण की प्रेम-लीलाओं को सुनकर आज किस सहृदय की आत्मा नहीं फड़क उठती । विविध प्रकार से प्रेम-क्रीड़ाएँ करके प्रेम-रस का इन महाराय ने जो मजा चखाया था, आज उसको याद कर करके प्रेमियों के हृदय ललक उठते हैं । कभी गोपियों के साथ रास-क्रीड़ा, तो कभी राधा के साथ वन-विहार; कभी प्रिया के संग मूला मूलना, तो कभी जल-विहार । यही नहीं, कभी-कभी तो इनको अद्भुत लीलाएँ रचने की सूझती । कभी-कभी आप रूप बदलकर प्रियाजी के पास जाते और उनको खूब छकाते । परिणाम यह होता कि इन दोनों प्रेमियों का प्रेम अबाध्य रूप से दिन-दिन बढ़ता ही जाता ।

इस दोहे में नटवर ब्रजविहारी की इसी बहुरंगी लीला का वर्णन है । आपके मन में आई कि वेश बदलकर प्रिया के पास चलें । वेश ऐसा सजाया, चाल-ढाल ऐसी बदली कि किसी प्रकार से पोल न खुल जाय । परंतु क्या आग भी कभी कपड़े

इस बेधारे रम की तो आत्मा ही समझो । कभी यह इस
 वर्तन में डाला जाता है, तो कभी उस वर्तन में; लेकिन यह
 कभी इन रसराज का ही है । इन्हें सोच-समझकर इन
 नारियों के बकर में पड़ना था । इनमें अधिक संबंध रखने से
 किसकी दुर्गति नहीं होती ?

५

॥

बहुरंगी बिहारी

साखे बहुरंगी रूप पिय, राधा तहँ हैसि दीन ;

दंताभा पक्षि रयाम वपु, घन विद्युतयुत कीन ।

प्रेम-साम्राज्य के सम्राट् भगवान् श्रीकृष्ण की प्रेम-लीलाओं से सुनकर आज किस सहृदय की आत्मा नहीं फड़क उठती । विधि प्रकार से प्रेम-क्रीड़ाएँ करके प्रेम-रस का इन महाराज को मग्ना चलाया था, आज उसको याद कर करके प्रेमियों के दिल ललक उठते हैं । कभी गोपियों के साथ रास-क्रीड़ा, तो कभी राधा के साथ वन-विहार; कभी प्रिया के संग मूला मूलना, कभी जल-विहार । यहो नहीं, कभी-कभी तो इनको अद्भुत कलाएँ रचने की सुकती । कभी-कभी आप रूप बदलकर प्रियाजी के पास जाते और उनको खूब छकाते । परिणाम यह होता कि दोनों प्रेमियों का प्रेम अबाध्य रूप से दिन-दिन बढ़ता ही जाता ।

इस दोहे में नटवर ब्रजबिहारी की इसी बहुरंगी लीला का वर्णन है । आपके मन में आई कि वेश बदलकर प्रिया के पास जाँ । वेश ऐसा सजाया, चाल-ढाल ऐसी बदली कि किसी प्रकार से पोल

शुभ्र सीप

हंसत राधिकः दंतधृति, मोहन मनहि लुभात ;

मनहुँ अरुन दारवों फटी, किधुं फटि सोरि सुहात ।

हम यह नहीं बता सकते कि राधाजी कौन-से मौक़े पर हँसी हैं, क्योंकि उनका हँसमुख मुखड़ा तो नित्य हँसता-सा ही जान पड़ता है। परंतु यहाँ कुछ-कुछ ऐसा मालूम होता है कि मोहन उनके मन को मोहने के लिये उन्हें गुदगुदा रहे हैं, और दूसरों को मोहने जाकर उनके खिलखिलाकर हँसने पर खुद ही मोहित हो गए हैं। हम उनको मनमोहन न कहकर मनमोहित कहें, तो अच्छा हो।

लोग कहते हैं कि मन देने से मन मिलता है, परंतु यहाँ तो पहले मन लेकर ही मन दिया है। लोगों को यह मालूम नहीं कि पहले एक प्रेमी मन देता होगा, तभी न दूसरा लेता होगा। यदि दोनों ही पहले से ही अपना-अपना मन दे दें, तो लेनेवाला तोसरा हो चादिए; नहीं तो वे मन थोच हो में टकराकर चकना-चूर हो जायेंगे। प्रेम की हार में जीत होती है, इसके अनुसार राधाजी ने पहले हार की हँसी हँसकर कृष्ण के मन को जीत लिया। वस, एक कहकहे में गुणग्राहकजी खुद ही विनदाम

बिक गए। नहीं-नहीं, बिनदाम तो नहीं बिके, उस फटी सीप में
 अमूल्य चमकदार मोतियों की लड़ी को देखकर आपको लोभ
 हो आया, अथवा पके अनार का फटते देखकर आपको उसका
 अनुपम रस चखने की मन में आई। यह क्या प्रेमनाथ ! प्रेम
 में भी स्वार्थ और लोभ !

रसना क रस

पट रस रसना चाखिके, नवरस देत चलाव ;

अधर अधररम पान करि, रस ही देत पिलाव ।

कटु, तीखा, अम्ल, मधुर, कषाय और लवण ये छः रस
 त्वरकर, यह रसना शृंगारादि नवरसों का रग्यास्वादन करा
 स्ती है । उदारता का अनुपम उदाहरण है । छः के बदले नव
 देना कुछ छोटी-मोटी बात नहीं है । फिर 'पट्रस विधि की
 सृष्टि में' के अनुसार छः से ज्यादा रस न होने पर भी वह नव
 रस प्रदान करती है । भलाई का बदला किसी को चुकाना हो,
 तो इसी तरह चुकाए । यदि इतना न हो सके, तो कम-से-कम
 अधरों की तरह, जितना रस पान करे, उतना तो पिला ही देना
 चाहिए । बड़े प्रेम के साथ इस ढंग से पिलाना चाहिए कि
 पीनेवाले को व्यास न बुझने पर भी तृप्ति हो जाय, और वह
 यही समझे कि मैं ही नके में रहा हूँ ।

अब बहुत-से ऐसे भी हैं, जो केवल लेना ही जानते हैं और
 देने का नाम तक नहीं लेते । नाक ही को ले लीजिए । आप
 संसार के सुंदर-से-सुंदर और सुगंधित-से-सुगंधित सुमनों की
 सुवास सूँघकर बदले में कुछ नहीं सुँघाते । पाठक कहेंगे—

“प्रिया के श्वास में सुगंध का आभास तो अवश्य रहता है”, परंतु यह आमोद उनके मुख-कमल में निकलनेवाले शीतल श्वास में ही होता है।

अथ कान की खरा और सुन लीजिए। आप खिड़की के एक कोने में जमकर रसना के सुनाए हुए नवरसों को सुन लेते हैं। फिर सुनाने की तो धान ही दूर रही। सुनानेवाले को उत्साह नरु नहीं देना जानते। आप बड़े कुतूहल और सूक्ष्म हैं, इसीलिये तो कवियों ने आपको अपनी कविता में बहुत कम स्थान दिया है। आपका बहुत कम गुणगान किया है।

सच्चा संदेह

गालन कहें नबनीत कहि, बिबुद्धि आम बताहि ;

पके दाख अधरन समुझि, माघो चाखन चाहि ।

घन्य हो माधव ! तुम्हारी महिमा कौन कह सकता है । हे मुरलीधर, तुम कभी तो ऐसे मुकुमार बन जाते हो कि मुरली तक नहीं सँभाल सकते, और कभी गिरिधारी बनकर पर्वत-का-पर्वत कनिष्ठिका पर धारण कर लेते हो । हे जगन्नाथ, तुम जगत् की रक्षा करते-करते, थककर गोपीनाथ बन बैठते हो; कभी पुरुषोत्तम बनकर समस्त संसार को उपदेश देते हो, तो, कभी गोपाल बनकर ग्वालों की तरह घनका-स्ता आचरण करते हो । तुम्हारे जिस मुकुट की एक मलक के लिये देवर्षि तक तरसते हैं, वह ही तुम्हारा मुकुट मानिनी राधाजी के चरणों में यों ही पड़ा लुटका करता है । तुम सबसे बड़े दाता और सबसे बड़े याचक हो । तुम सबसे ज्यादा शूरवीर और सबसे बड़कर कायर हो । गीत और गान गानेवाले तुम्हीं और गोपियों का गोरस हरण करनेवाले भी तुम्हीं हो । तुम्हारा कहाँ तक बखान करें । त्रिभुवन में ऐसी कोई बात नहीं, जो तुममें न हो । तुम प्रकृति के प्रवर्तक जो ठहरे । तुम सबसे बड़कर समझदार और

सर्वज्ञ तो हो ही ; हम उर तुम्हारे मोलेपन का भी बयान करना चाहते हैं ।

गोपियों के गालों को माखन, उनके बिभुओं को आम और उनके झोठों को पके दाख बनाकर आप बखाना चाहते हैं । वे बेचारी , भोली-भाली ललनाएँ तुम्हारे इस रहस्यमय मोलेपन को क्या जानें ? बेचारी सोचती होगी—“लल्लूजी बड़े मोले हैं और इन बातों से अभी अनभिज्ञ हैं । अपना क्या जाता है ? इनका हठ पूरा हो जाने दो”, परंतु वे यह नहीं जानती कि इस दाखन में चुंबन छिपा है, जो चतुर गोपियों के चंचल चित्त को चुंबक की तरह अपनी ओर आकर्षित कर लेता है । परंतु इस नटखट, नटवर नंदनदन को ‘जा’ कहें भी, तो कैसे करें ? यदि कहीं से दाख या आम मिल जायँ तब तो उसे दे भी दें ; परंतु वह तो ऐसे समय में इनको बखाना चाहता है, जब कि इन फलों का समय ही नहीं है । यदि माखन कहीं से लाकर बखायें भी, तो हजरत फरमाते होंगे—“नहीं, यह माखन इतना साफ, चिकना और स्वादिष्ट नहीं है, इसलिये मैं तो तुम्हारे इसी पहलोगाले माखन को चखूँगा ।” फिर बेचारी ब्रज-बालाएँ कहीं तक बहानेबाधियाँ करके बच सकती हैं ?

इंतु की ईर्ष्या

प्यारी की मुख देखिकै, परो डाह के पद ;

याही सौ नित दूबरो, होत बापुरो चंद ।

इधरत चंद्र तो घुरे फंदे में फँसे । किसी नायिका विशेष के सुंदर मुख को देखकर डाह के मर्ज में मुचतिला हो गए । दर्पण उठाकर बार-बार मुख देखते हैं । नायिका के सौंदर्य के मुकाबले में अपने सौंदर्य को फीका पाकर डाह से जले जा रहे हैं । घुरे चक्र में पड़ गए हैं । “चिता भली चिता घुरी ।” इसी चिंता के कारण बापुरा चंद्र नित दुबला हो रहा है । पाठको ! बन सके तो शीघ्र कोई इलाज करो । रोग जो कहीं असाध्य हो गया, तो हमें भी मुसीबत उठानी पड़ेगी । जो कहीं इसी चिंता में चंद्र इस संसार से चल बसे, तो बस समझ लो, संसार में झेंधेरा छा जायगा । चाँदनी रातों के लिये फिर रोते ही रह जायेंगे । परमात्मा न करे, जो कहीं इस तरह की नौबत पेश आ जाय, तो हमें भी थोरिया-बिसतरा बाँधकर चंद्र के साथ कूच करने को तैयार रहना चाहिए । भला इनके बिना तो यह सारा संसार शून्य प्रतीत होगा ।

सुनते हैं कि विलायत में बड़े-बड़े चोर रहते हैं । किसी से

कोप का कारण

राहु न ग्रस सकि चंद को, विधि सों बैठो कोपि ।

वियमुख पटतर खीनता, लखि न सकहि मन गोपि ।

चंद्र सौंदर्य-जगत् का जीवन-प्राण है । वह तो विधि की कारीगरी का उत्कृष्ट नमूना है । अपनी कारीगरी का सबको अभिमान होता है और अपनी बनाई हुई सुंदर कृति सबको प्यारी लगती है । फिर भला चंद्र विधि को प्रिय क्यों न होगा ? उन्होंने तो इसकी रचना में अपनी प्रतिभा का खूब उपयोग किया होगा । तभी तो चीज भी ऐसी सुंदर बनी, जो सुंदर वस्तुओं में सबसे उत्कृष्ट नहीं, तो उनमें से एक अवश्य है । अतः अगर इस प्रिय वस्तु पर दुःख पड़े, तो विधि से सहन न हो सकेगा । परंतु विधि तो सृष्टि के आधार, कर्ता-धर्ता ही ठहरे । किसकी मजाल है कि उनकी चीज पर आँख मढ़ावे ? वच तो यह स्पष्ट है कि राहु द्वारा चंद्र के ग्रसे जानेवाली किंवदंती निस्तार और बेसिर-पैर की समझी जानी चाहिए । भला राहु ऐसे तुच्छ जीव की क्या मजाल, जो सृष्टि के स्रष्टा विधि की, जिनका लोहा सब मानते हैं, चीज को दुख देने का दुस्ताइस करता । यह तो कल्पना के भी

बाहर है। तब तो कान्पनिष्ठों की उटपटांग कथाओं ने घोसा दिया।

यह तो ठीक है, किंतु हम जो चंद्र महीदय को कभी-कभी गुणव और कभी-कभी विकृत रूप में देखते हैं, इस शंका का समाधान कैसे होगा ? लोजिए, कविजी ने इसी का समाधान कर दिया है, जो मन में सोलहों आने ठीक जैसा जाता है। यह यह है कि चंद्र का राहु द्वारा मसा जाना निर्मूल है। यह चंद्र तो और-और मनुष्यों की तरह कभी-कभी कोप में आकर अपने स्वामी विधिजी से रुठ जाता है। रुठता है इसलिए कि संसार की सुंदरियों की सुख-युति अपने से भी बढ़कर देय, इसके मन में ईर्ष्या-भाव पैदा होता है। पाठक ! क्या सोचने पर मालूम होगा कि इस डाह का आंतरिक कारण क्या है। कारण यह है कि जहाँ चंद्र को पक्ष के अनुसार चीरकता होने, और क्रमशः घटने-बढ़ने का असाध्य रोग लगा हुआ है, वहाँ सुंदरियों के मुखचंद्र की आभारूपी कला पटने के बजाय दिन-दिन बढ़ती ही है। वहाँ तो घटने का नाम तक नहीं है। वहाँ तो 'नितप्रति पूर्ण्यो ही रहे।' दूसरे, चंद्र में कलक है, पर त्रिमुखचंद्र में कलक का नाम नहीं। यह हीनता भला मानियों में अग्रगण्य चंद्र से कब सह्य जा सकती थी। अब कोप किस पर करें। उसी विधि पर ही न, जिसने कहने को

तो दोनों को पक्षपात रहित होकर बनाया, पर किया वास्तव में सरासर अन्याय कि द्रो को चंद्र की अपेक्षा यह विरोध गुण दे दिया ।

मला मान की आन पर बलिदान होनेवाले मुर्षांगु इस गर्व-रंजन को देख, कैसे चुप रहते ? अतः जी में सोचा कि विधि को इस क्षापरवाही का मर्यादिताना चाहिए । आपने आजकल के सभ्य-संसार के कर्मिलारों की तरह मानहानि के मौके पर पदत्याग करना ही उचित समझा, जिससे समस्त संसार सहित विधाताजी को भी यह तो मान्य हो जाय कि चंद्र महोदय भी कोई चीज हैं; उनका अपमान उनको कदापि नहीं करना चाहिए । अब भी पश्चात्ताप करके उनको क्षमा-प्रार्थना करनी चाहिए । परंतु विधिजी क्या करें ? उनकी तो जान आकत में है । वे क्या जवाब दें ? उन्होंने जान-बूझकर तो यह घोषणाही की ही नहीं थी, जो दोषी ठहरते । मुंदरियों में स्वभावतः ही मोहिनी शक्ति होती है; वही शक्ति उन पर भी काम कर गई । उनको यह ज्ञान तक न हुआ कि उन्होंने क्या राइज कर डाला । दबि-रचना करने-करते ही पागल की तरह बिना सोचे-विचारें यह विरोध गुण त्रियों को दे दिया । यह हुआ चंद्रमहल का असली रहस्य ।

मयंकों की मानहानि

चार चमक मुखचंद्र की, दोसे स्वाम पट ओटि ;

ऐसी हिय में बस गई, मात न शशि मुहि कोटि ।

नायिका श्याम घीर ओढ़े हुए है । उसकी ओट में से उस के मुखचंद्र की चारु चमक मेरे हिय में ऐसी समा गई है कि एक-दो नहीं, करोड़ों चंद्रमा भी उसके मुख के मुकाबले में मुझे अच्छे नहीं लगने हैं ।

करोड़ों चंद्र भी अच्छे न लगें, तो कोई अचरज की बात नहीं है, क्योंकि मुखचंद्र की कुछ निराली ही शोभा है; चंद्र वास्तव में उसे नहीं पहुँच सकता । श्याम पट है, वही श्याम घन है । उसकी ओट में से नायिका का मुख जो दीख पड़ता है, वही चंद्रमा है । किंतु यह मुखचंद्र शशि से अधिक शोभाशाली है, क्योंकि यह निष्कलंक है । फिर भला इसके सामने कलंक-पूर्ण चंद्रमा, चाहे करोड़ों ही क्यों न हों, कैसे ठहर सकते हैं ? आप क्या नहीं जानते हैं, “व्यारी को विधि धोए हाथ, ताको रंग जमि भयो चंद्र, हाथ सारे हैं ।” तब वापरा चंद्र इस नायिका के मुख की कैसे कर सकता है ? क्या ही अच्छा होता, यदि विधि

आकार में कोई ऐसा ही निष्कलंक चंद्र बना देता, जिससे
 आपको ऐसा अनुपम सौंदर्य देखने को मिलता ।



नभ का नीलम

नीले पट लमि भ्याम देव, राधा मुन शमे मोदि;

निलम म्हांगे म्हाकि मनु, चंद जमुन जन जोदे ।

इधर राधाजी ने नीली साड़ी पहनी है । साड़ी पर चरी के तारे जड़े हुए जान पड़ते हैं । उस साड़ी पर उनका मुख ताराओं से मिलमिलाने हुए आकार में चंद्रमा की तरह प्रतीत होता है । श्रीकृष्ण का रंग नीला है ही; उनका विशाल वल-स्थल नीले जल से भरे हुए यमुना के चौड़े पाट की तरह जान पड़ता है । राधाजी प्रेम-पूर्वक उनके श्याम हृदय को देख रही हैं । उधर चाँदनी खिली हुई है । निशा-नायिका ने तारु-जटित नील गगन को ही साड़ी की तरह पहना है । चंद्र ही निशा का मुख है । यह अपने प्रिय यमुना के नील जलरूपी हृदय में भँक रही है । या यों कहिए कि इधर तो चरी के तारारूपी नगों से जड़ी हुई साड़ीरूपी नीलम के मरोखे से राधा का मुखचंद्र कृष्ण के हृदय में और उधर तारारूपी नगाँ से जटित आकाश-रूपी नीलम के मरोखे से चंद्र यमुना-जल में भँक रहे हैं । यही सब तरह हमारे कवि की कल्पना-बहु के सामने घूम रहे होंगे । उसी समय आपने यह अनूठी उत्प्रेक्षा की होगी ।

आप कहते हैं—“नीले रंग की साड़ी में से श्याम के हृदय को देखती हुई राधाजी का मुख ऐसा प्रतीत होता है, मानो आकाशरूपी नीलम के करोखे से झाँककर चंद्रमा यमुना के जल में प्रतिबिंबित होता हो।” राधाजी का नीला घूँघट ही नीलम का करोखा माना गया है। ऐसे-ऐसे मुंदर भवनों का ऐसा ही नगजटित नीलम का करोखा होना चाहिए। देखा कविजी को आपने ! नीलम की नभ में चढ़ाकर छोड़ा। पता नहीं कविजी किस चीज के करोखे से झाँककर कौन-से जल में अपना प्रतिबिंब देखते हैं ? हाँ, खयाल आया, आप शायद ज्ञान-रूपी नीलम के करोखे से झाँककर कल्पनारूपी जल में अपना प्रतिभारूपी प्रतिबिंब देखते होंगे। खैर, हम भी आज से इस प्रकार देखना सीखेंगे।

सुंदर सुमन

यह बेली मुख सुमनवर, प्रीवा नलिका मात ।

कारं कोमल कच मधुर, नाई शोभा पात ।

नायिका का घड़ तो सुंदर लता है । उसका मुख-मंडल सुंदर पुष्प है । उसकी प्रीवा उस मुखरूपी पुष्प की सुमन नलिका है । उसके काले और कोमल केश इस प्रकार शोभा देते हैं, मानो पुष्प पर भौर बैठे हैं ।

सचमुच बड़ा ही सुंदर सुमन है । यह पुष्प तो कवि की प्रेम-वाटिका का मालूम होता है । क्या अच्छा होता, यदि विधि हमको इस वाटिका की बुलबुल बना देता । सुंदर-सुंदर सुमनों के सौंदर्य का खूब निरीक्षण किया करते । पुष्पों को मीठे-मीठे तरनि सुनाया करते, और इस प्रकार खुद शाद होते और उन सुमनों को शाद करते । उनके द्वारा सौंदर्योपासना का पाठ भी पढ़ लेते ।

लट की लपेट

तिय कुच मलय पदार पै, गल चंदन तरु जान ;

लट कारा छै के मनहु, नागिन लिपटी आन ।

श्री के कुच ही मलयाचल पर्वतावली के दो उत्तम शृंग हैं । उन पर कामिनी का चंदनवर्ण का कलितकंठ ऐसा प्रतीत होता है, मानो चंदन का वृक्ष खड़ा हो । इसी को स्पर्श करती हुई उसकी काली, टेढ़ी और लंबी लट ऐसी मालूम होती हैं, मानो नागिनें आ लिपटी हैं ।

कहिए, कैसा हरय रहा ? सच तो यह है कि बहुत थोड़े भाग्य-शाली पुरुषों को यह हरयावली देखने को मिलती है । और उन थोड़ों में भी कई ऐसे होते हैं, जो इस हरय को देखकर भी दृष्टि को पवित्र नहीं करते हैं । वे जड़-हृदय होते हैं । अतः कविजी ने बड़ी कृपा कर सर्वसाधारण रसिकों के लिये, जिनको यह सौभाग्य नहीं प्राप्त होता, परंतु जो हृदय से प्रेमी हैं, यह उसी के समान हरय दिखला दिया है, ताकि जब तब वे अपनी अंतरात्मा के पट पर इसका चित्रण कर प्राकृतिक सौंदर्य का सा ही मजा उठावें । कहते हैं कि मलयाचल पर चंदन-वृक्ष बहुत हैं । उनकी विरोपता यह है कि साँप उनकी शालियों पर

लिपटे रहते हैं। यह उन वृत्तों की प्राकृतिक शीतलता और सुगंध के ही कारण होता है। नहीं तो मला साँप-जैसा दुष्ट अंतु किमका साम्नी हो सकता है ? वह तो दूध पिलानेवाले अपने स्वामी पर भी मौका पाकर चोट कर देता है। उसकी भी आन नहीं मानता। यह तो चंदन की शीतलता और सौरभ की ही शक्ति है कि उस शीतान की शठता को शांत कर उसके स्वभाव को भी भुला देती है।

यही हाल है नायिका की लटों का। वे भी तो चोट करने में कुछ सर्प से कम नहीं हैं। उनको तो देखकर ही प्रेमी अपने आप मरने लगते हैं। परंतु देखिए, इन्हीं लटों ने नायिका के गले के संसर्ग से अपने दुष्ट स्वभाव को भुला दिया है। नायिका के गले की सुधरता, कोमलता और जवानी में अंग से निकलने वाली सुगंध से लटें मुग्ध हो गईं और उससे जा लिपटी हैं। समय-समय पर आनंद-नृत्य कर-करके अपने हर्ष को प्रकट करने लगी हैं। पाठक, अब आपको इन नागिनों से डरना नहीं चाहिए, क्योंकि जब तक प्रिया के चंदन-वृत्तरूपी कंठ से इन लट-नागिनों का संघर्ष रहेगा, तब तक इनका दुष्ट स्वभाव प्रकट नहीं सकेगा।

प्रेम की प्रवीणता

रात गहन वन भँवत लाखि, पथिकनि प्रेम प्रवीन ;

कुच गिरि मंग उतंग पै, जुग मनि जनु धरि दीन ।

इस वन में कौन पथिक नहीं भटका ? क्या किसी ने इस-का पार भी पाया ? इसके अंदर प्रवेश करके क्या बहुतों ने निकलने की व्यर्थ चेष्टा न की ? कवि कविता कर हारे, परंतु—‘जाको बर्णन करि थके, शारद शेष महेश’—उसका भला वे कैसे बर्णन करते ? चित्तेरों की तो कुछ न चली। वे इस वन को विग्रण करने बैठ खुद ही विग्र बन गए, या चंचलचित्त होकर चुप रहे। सच है, इस वन के चित्र को चित्रित करके—‘भए न केते जगत के चतुर चितेरे कूर ।’ जिस वन के हाथियों की मदमाती चाल की समता सुंदरवन के हाथी भी नहीं पा सके; जिसमें निवास करनेवाले सिंहों की कटि के काट को हिमालय की तराई में रहनेवाले सिंह तक तरसते हैं; जहाँ मानसरोवर के हंस मौजूद हैं; जहाँ शुक्र, पिक, खंजन, कपोत इत्यादि पक्षी; मीन इत्यादि जलधर; सर्प-सर्पिली इत्यादि यलधर नित्यप्रति निवास करते हैं; जहाँ कभी न कुम्हलानेवाले कमलों तथा अन्यान्य फूलों पर

रात-दिन भ्रमर मेंढ़राने रहते हैं; जहाँ काली कस्तूरी के मर में मल मृग अन्यान्य वन के निवासी मानी मृगों का मान मंग कर देते हैं; जहाँ कदली, चंपा, रसाल, चंदन इत्यादि वृक्षों के घने कुंज, सोनजुही, चमेली, लाजवती इत्यादि लताओं से छाए हुए तथा गुलाब, अनार, अंगूर इत्यादि पौधों से घिरे हुए हैं; जहाँ अमृत, बाकली, राख, चंद्र, ऐरावत, घनुष इत्यादि समुद्र से निकले हुए रत्न तक मौजूद हैं; जहाँ अनेक प्रकार के टेढ़े-मेढ़े नदी और नाले हैं; अथाह कूप व तालाब हैं; जहाँ पहाड़ों में अगम दरें और घाटियाँ हैं; जहाँ कभी-कभी ज्वालामुखी पर्वत से ज्वाला निकलकर सबको जलाती है; तूफान चलते रहते हैं; वर्षा होती रहती है; जहाँ मतवाले मीणों और डरावने हाकुओं का घर है और जहाँ बड़े हुए शिकारी, जानवरों का शिकार न करके बेचारे भूले-भटके बटोहियों का ही शिकार खेलते हैं। भला ऐसे वन में भ्रमण करके किसको भय-भ्रम नहीं होता। फिर जहाँ पहले से ही अंधकार है, वहाँ रात के घोर अंधकार में चलनेवाले यके-मादि पक्षियों की सुसीबत का तो कहना ही क्या है !

यह आश्चर्यजनक जंगल प्रेम-नामक राजा के राज्य में है। प्रेमदेव बड़े बुद्धिमान हैं और प्रजा की रक्षा करने में तत्पर जान पड़ते हैं। देखो, भट्ट उन्होंने कुचरूपी पर्वतों के ऊँचे

से ही गति होगी । कूप के अंदर का दृश्य तो देखकर दिमाग चकर खाने लगेगा । माया ने खूब अकल खर्चकर उसमें ऐसे-ऐसे कोमल, सुंदर और मन लुभावने फंदे फैलाए हैं कि गिरते ही जीव उनमें फँस रहता है । अत्यंत कोशिश करता है कि निकल जाऊँ, पर ये सब यत्न निष्फल होते हैं । तेली के बेल के सदृश घूम-धामकर आखिर उसी जगह आ टिकता है । अच्छी भूलभुलैयाँ हैं । क्यों न हो, मायादेवी ने इसकी रचना की है ।

सावधान हो जाइए, इससे कोसों दूर रहिए; थोड़ा भी पैर इधर बढ़ाया कि जादू की पुतली की तरह अपने आप खिंच आयेंगे, और अंत में वही हाल होगा, जो सबका होता है ।

छवि-छाक

कुच-पर्वत छवि छूटत ही, परो पेट के गार ;

बायें मो मन फौंसि रणो, मकन न कोऊ काद ।

मधु मास में मुदित मन मधुप को मृदु मंजरी पर मल्ट
होकर मेंहराता हुआ और मंजुल मालती तथा मल्लिका के
मुकुलित मुकुलों के मधु-मकरन्द के लिये मरता हुआ देख-
कर, मतवाले मन महाराज मोहित हो गए, और उनके मन
में आई कि किसी महीधर-माला पर चलकर मलयज मकरन्द-
मय, मंद मारुत का सेवन करें और मनोहर मंदिरों में मन
को एकाग्र करके माधव की मान-लीलाओं पर मनन करें
तथा मन-मंदिर में मनमोहन की मनमोहिनी और मानिनि
के मान-मर्दन करनेवाली मधुर मुरली की मीठी तान :
मौन होकर ध्यान-पूर्वक सुनें । यह मन में आते हो आ
मेल-ट्रेन से भी तेज, मानसिक ट्रेन पर सवार होकर पल
भपकते संसार के समस्त शैलों से सुंदर कुच-पर्वत-माला प
जा पहुँचे । इन पर्वतों के नीचे उपजाऊ उपत्यका थी । कि
दूर-दूर तक मैदान में मयंक मयूखों के मीठे और मंद
प्रकारा में अनेक प्रकार के दर्शनीय दृश्य दृष्टिगोचर होते

ये । दो सुन्दर और सुघर पर्वत अपनी गगन-चुंबी चमकीली
 चोटियों को गर्व-पूर्वक ऊँचा चठाए खड़े हैं । दोनों रंग-रूप,
 धमक-धमक, कोमलता तथा काठिन्य में एक ही जैसे हैं ।
 दोनों पहाड़ों के बीच में बड़ी गहरी घाटी है । इस घाटी
 में से होकर कलकल करती हुई, कलकारिणी, प्रेम-पय से
 भरकर उमड़ती और इठलाती हुई, त्रिवलीरूपी सुन्दर वन
 में से होकर पेट के सौंदर्य-समुद्र नाभी में जा गिरी है ।
 सुख-मलय से मलयज मारुत, मंद-मंद गति से सीत्कार के
 रूप में बढ़कर, कुच-पर्वतों पर सैर करनेवाले शौक्रीनों
 के मनो को मोहित कर रही है । फिर मन महाराज तो
 खुद मन ही ठहरे, इनके मन कहाँ था; अतः आप स्वयं ही
 मन होने के कारण कुच-गिरि के छवि-छाक से छककर
 और मलय-पवन के सुगंधयुत शीतल और मंद प्रवाह पर
 मुग्ध होकर लहू बन गए, और लगे लहू की तरह घूमने ।
 आपको यह याद न रहा कि आप पर्वतों की लाल-लाल
 चोटियों की एक चट्टान पर चढ़कर बैठे हैं । मग्न होकर
 आप सुष-सुष विसर गए । बस फिर क्या था, पैर ढिगते
 ही बिन पैर का मन ढिग गया और उत्तंग शिलोच्चय शृंग
 से लबालब भरे हुए पेट के पाट में गिर पड़ा और उसके पानी
 के प्रवाह में प्रवाहित होकर समुद्र के सबसे गहरे स्थान

नाभी में जा रहा । फिर मला हाथ-पैर पटकने और पर फटा-फटाने से क्या होता था ? बहुतेरा रोया-बिलाया, पर वहाँ कौन सुनता था ? अति सूदम होने के कारण, और इतने गहरे पानी में राक़ होने के कारण, उसको कौन देख पाता ! फिर जो कोई देख-सुन भी ले, तो हिम्मत करके निकालने कौन जावे ? दूसरों को वहाँ से निकालना तो दूर रहा, खुद ही उसमें प्रवेश करके कोई नहीं निकल सकता ।

आजकल पारचात्य सभ्यों की सभ्यता की नक़ल करनेवाले हमारे पर्वत-प्रेमी भाइयों की भी यही दशा है । ऊँचे बढ़कर गिरे हुए, उनको पारचात्य शिष्टा के गाढ़ से निकालना कठिन ही नहीं, असंभव-सा जान पड़ता है ।

अगम अर्णव

तिय छवि भवसागर विचै, को करि सकिहै पार ।

मन मोहन कहै त्रिबलि जह, लोभ, मोह अरु मार ।

पंडितों का मत है कि यह संसार एक माया-जाल है, जिसमें माया ने ऐसे-ऐसे प्रलोभन रक्खे हैं कि जीव-पथिक उसके चंगुल में फँसकर भूलभुलैयाँ में पड़े हुए अजनबी की तरह चक्कर खाने लगता है, परंतु रास्ता नहीं पा सकता। बीच-बीच में लोभ, मोह और काम इस प्रकार से आ उपस्थित होते हैं कि बेचारा जीव-पथिक इनकी ऊपरी तड़क-भड़क और मनमोहक छवि देखकर इनको अपना द्वितीयो समझकर इनके फंदे में फँस जाता है। एक बार फँसने पर फिर निकलना मुश्किल हो जाता है। इससे बचाना तो उस परब्रह्म की ही सामर्थ्य में है। उसी की भक्ति से इनका वास्तविक रूप समझ में आ सकता है, और तभी इनका त्याग भी हो सकता है। परंतु जरा सोचने पर मालूम होगा कि इस संसार को भी सफलता-पूर्वक पार करना कोई मुश्किल बात नहीं है। भगवद्भक्ति इसके लिये एक अच्छा उपाय है। वह फ़ौर हो, वो हो; परंतु असंभव तो कदापि नहीं है। किंतु दूसरी ओर बल्लकर देखिए। नायिका के छविरूपी गूहत् संसार को

पार करना षड़ी टेढ़ी खीर है। उसके प्रलोभनों से तो षव निकलना मानो अनहोनी होनी हो जाना है।

संसार में जब जीवात्मा आता है, और अपनी लंबी यात्रा शुरू करता है, तो पहले तो उसकी यात्रा विषयों द्वारा बाधित नहीं होती। परंतु यात्रा के बीच तक पहुँचते-पहुँचते वह उनके फेर में फँस रहता है। इसी प्रकार इस त्रिय-श्रुवि-संसार में पहले तो जीव को यात्रा सुख-पूर्वक व्यतीत होती है, परंतु जहाँ बीच यात्रा में पहुँचा, तो ऐसे जाल में फँसता है कि एक बार तो प्रभु भी घचावें, तो सुरिकल है। त्रिबली के मनमोहक, चमकीले और सुंदर जाल में इस बुरी तरह से फँस जाता है कि फिर वही घके खाता रहता है। घचानेवाला भी कोई पास नहीं रहता। अजनबी जानकर कोई रक्षा के लिये नहीं दौड़ता। चलते निकालने के मिस कोई और ज्यादा भले फँसा जाय। बेचारा इस शोचनीय दशा में पड़ा-पड़ा खिंदगी बिताता है। आगे बढ़ने औ बाकी मजिल तय करने की आशा, निराशा-मात्र हो जाती है

पाठक ! सावधान हो जाइए, भूलकर भी इस राह पर न जाइए, अन्यथा बुरा होगा। बढ़ने पर रोग ऐसा असाध्य हो जायगा कि डॉक्टर भी छूत के भय से दूर भागने लगेंगे। परमेश्वर त्रिय-श्रुवि संसार के इस आवर्त से घचावे।

कलई किया काँच

लिय करतल में हरी दिए, वयो चालति इठलाति ;

कलई किए से काँच निज, रूपहि निरखति जाति ।

आजकल संसार में नई-नई खोजों और आविष्कारों की भरमार है। थोड़े दिनों से विज्ञान-विशारदों ने तो इस ओर खूब फरमावट दिखाई है। कभी उन्होंने बंदरों से बातचीत करना सिखाया, तो कभी मनुष्य को आकाश में उड़ना बताया। चीजें भी बड़ी-बड़ी आश्चर्यजनक बनी हैं। भला, आविष्कार का बाजार जब इतना गर्म था, तो अकेले हमारे कविवर ही किससे पिछड़ते। वे भी अपने कल्पना-पूर्ण मस्तकरूपी औजार को लेकर आविष्कार करने चले। खूब भटके। आखिर चलते-चलते आपने एक नायिका को मस्त पाल से, इठलाती हुई, चलते देखा। देखकर इसके इस प्रकार चलने का कारण सोचने लगे। भला मस्तिष्क के सामने ऐसी कौन-सी कठिन समस्या है, जो हल न हो सके। तिस पर भी ये तो कवि ठहरे ! इनका तो कार्य ही यही था कि विचित्रता के पीछे सिर खपाया करें। लगे खूब ध्यान-पूर्ण विचारने। सोचते-सोचते सिर पर पसोना हो आया, पर कारण न सूझा। अंत में ईश्वर की कृपा हुई; आपको कारण

मिल ही गया । नायिका की हथेली पर लगी हुई लाज मेंदरी को देखकर एक भाव सूझा । नायिका भी अपनी हथेली को निरखती हुई जा रही थी । अब क्या था, कवित्री अपनी उद्दिष्ट शोज को पा गए । उन्होंने दुनिया में बड़ा भारी आविष्कार कर डाला ।

वह यह था कि जिस प्रकार काँच के पीढ़े लाल रंग की कलई लगी रहने से ही उस पर मनुष्य का प्रतिबिम्ब पड़ सकता है, और वह उसमें अपनी रूप-शोभा को देख सकता है, उसी प्रकार नायिका के, कररूपी काँच की हथेली पर, मेंदरीरूपी लाल कलई किए जाने पर, हाथ की युति और आभा इतनी बढ़ गई कि नायिका का सुंदर मुखड़ा उसमें प्रतिबिम्बित होने लगा । अतः अपने कररूपी दर्पण में अपना छवि-सौंदर्य देख-देखकर वह इठलाती हुई चली जाती थी । यो तो आविष्कार खूब हुआ । बहुत-से छोटे-छोटे सुंदर और कौतुकोत्पादक दर्पण निकले, जेबी दर्पण और हाथरो पर के दर्पण निकले । यहाँ तक कि हासन कपनी के घूट भी ऐसी पालिश करके चमकीले बनाए गए कि दर्पण की अरुख ही न रही । जब चाहो, तब उनमें मुख देख लो ! सब कुछ हुआ, परंतु इस प्रकार का दर्पण अब तक नहीं निकला था । कवित्री के इस दर्पण ने तो सब दर्पणों के दर्प को दलित कर

दिखाया । ऊपर कहे काँचों को तो प्रयत्न-पूर्वक साथ रखना पड़ता है, परंतु यह काँच तो कुदरती तौर पर ही हमेशा साथ रहता है । यह तो भूला भी नहीं जा सकता । फिर इस प्रकार के किसी काँच की आजकल के जमाने में जरूरत भी तो बड़ी भारी थी; क्योंकि आजकल 'कैशनेबल' संसार में रूप-शोभा निरखने को काँच अत्यंत आवश्यक चीज हो रहा है । अच्छी तरह 'वियर सोप' से मुँह रगड़ा गया हो, 'पोमेड वैसलिन' मला गया हो, फिर नए ढंग की 'अप-टु-डेट' माँग सँवारी हो और अगणित प्रकार के 'लेवेंडर' लगाए हों, परंतु एक दर्पण के बिना यह सब बृथा हैं ।

कविजी ! आपके इस आविष्कार के लिये समस्त कैशनेबल संसार ऋणी है । आपने तो नायिकाओं के लिये ही बताया था, परंतु अब तो नायक भी इसका गुण समझ गए हैं । वे भी इसे धारण करेंगे । निश्चय है कि माँग जल्द ही बढ़ेगी; अतः हमारे राय है कि आप शीघ्र इस क्रलई का व्यापार खोल दीजिए । पौवारह पचीस हो जायेंगे । हम तो आपको सावधान कर देते हैं कि आप इसका 'पेटेंट राइट' करवा लीजिए, नहीं तो खौर-खौर लोभी व्यापारियों के चेत जाने पर आप इस फायदे से हाथ धो बैठेंगे ।

सरस सैनिक

दिनाथ गुनाषो नख यद्दे, निष कर पद इमि दामः ।

विधि छविपुर रच्छाहितै, किए मुवैनिक बीम ।

कल्पना कैसी बढ़िया है ! किस युक्ति से 'छविपुर' को रक्षा के लिये बीस भिपाही तैनात किए हैं, ठीक है। ऐसा तो होना ही चाहिए। आजकल कलियुग का जमाना है। विश्वास दिन-दिन संसार से उठा जा रहा है। जिधर देखो, उधर सब कोई अपना-अपना स्वार्थ साधने में लगा है। जहाँ कहीं किसी अरक्षित वस्तु को देखा, तो झटपट उस पर एक साथ ही बहुत-से झपट पड़ते हैं। ऐसे कठिन समय में अगर छविपुर का गढ़ अरक्षित रहता, तो आश्चर्य नहीं कि कुटिल हृदय उस पर आँख गड़ाते और मौका पाकर उसके अंदर का माल हरण करते। इस वास्ते पहले ही से सजग हो जाना ठीक है। छविपुर तो कोई ऐसा-वैसा कंगाल का गढ़ है नहीं कि उसमें चोरी होने का डर ही नहीं। उसमें तो अनंत परिमाण में रत्न भरे हैं। फिर उसको सूना क्यों छोड़ा जाय। परंतु प्रश्न तो यह होता है कि उसकी रक्षा का विधान करे कौन ? वही न, जो उसका मालिक, कर्ता-धर्ता है ?

विधि ने ही बड़ी कारीगरी के साथ, दिमाग खर्चकर इसको सर्वगुणसंपन्न बनाया है, और वही इसका स्वामी है ।

अतः उसी पर इसकी रक्षा का भार पड़ा । रक्षा का जो विधान जुटाया, तो उसे देख-देखकर संसार चकित हो गया ।

पाठक ! रौर से देखिए, किस अपूर्व ढंग पर, किस प्रकार के सैनिकों द्वारा इसकी रक्षा करवाई है । पहले तो नष्ट-रूप सैनिकों को ऐसे-ऐसे अरक्षित स्थलों पर नियत किया, जिससे धूर्तों का चक्षु-आक्रमण सहज में न हो सके । पुनः एक ऐसी युक्ति निकाली कि आक्रमण करना तो दूर रहा, आक्रमणकर्ता इन सैनिकों तक आकर, इनकी रूप-शोभा और सहृदयता को देखकर ही पानी हो जाते हैं, और अपने कुटिल उद्देश्य को भूल जाते हैं । गुलाबी, स्वच्छ, चमकीली और आभापूर्ण वर्दी पहने हुए इनको देखकर कपटी हृदयों का कपट और ढोंग दूर हो जाता है । फिर ये सैनिक सरस भी हैं । इनकी स्निग्धता राख्य ढाती है । आजकल के सैनिकों की तरह ये अहृदय, लट्टमार, रुखे मिश्राज और शिष्टता से शुन्य नहीं हैं । ये तो हृदय में स्निग्ध हैं — दया-पूर्ण हैं । निस्संदेह, इन गुणोंवाले ये बीस सैनिक जरूर इस छविपुर की रक्षा कर सकेंगे । क्यों न करें । इनका सरदार तो वही विधि ही है न !

पड़ोसियों का प्रमाद

कुच कपोल कदं बढ़त लसि, बड़े नितंब कुच नैन ;

कटी छाँन भई जान है, मैंहि नःही चैन ।

नवयौवन का पदार्पण हुआ है । उनके नवामन के कारण अंग-प्रत्यंग में हर्ष का संचार हो रहा है । मानो यौवनराज ने अपनी नई प्रजा को पारितोषिक प्रदान किया है, और उन्हें ऊँचे-ऊँचे ओढ़वे और पद बरुशे हैं ।

अपने अंग के जानिके, यौवन नृपति प्रबोध ;

स्तन मन नयन नितंब को, बड़ो इजाफा कीन ।

केश कप्तान से कुमेदान बना दिए गए । कपोलों की लाल सिरोपाव मिला है । वे उसको पहनकर लाली लिए हुए, इधर-उधर, अंगर-बंगर, अड़ोस-पड़ोस में, लाली की निराली आभा फैला रहे हैं । पड़ोसियों की बढ़ती देखकर कुच, नितंब और नैन फूले नहीं समाते । बड़े प्रेमी प्राणी प्रतीत होते हैं । दूसरों के दुःख में दुःख और आनंद में आनंद मनाने वाले पड़ोसी आजकल कम पाए जाते हैं । फिर कुच, नितंब और नैन-जैसे पड़ोसी तो संसार में बिरले ही हैं, जो अपने पड़ोसियों की बढ़ती देखकर, चौगुने बढ़ जाते हैं ।

अब दूसरी ओर जली-कटी कटि का प्रमाद देखिए । इससे पड़ोसियों की बढ़ती न देखी गई और यह ईर्ष्या की अग्नि से जल-भुनकर दिन-दिन क्षीण होने लगी । भला इससे उनका क्या बिगड़ता, उल्टा इसी का ह्रास हुआ । सचमुच, ईर्ष्या बड़ी बुरी बला है । पाठक तर्क कर सकते हैं कि कटि पड़ोसियों में श्रेष्ठ कही जा सकती है, क्योंकि शायद उसने हर्षित होकर अपने पड़ोसियों की बढ़ती की बधाई में अपना सर्वस्व दे डाला हो । परंतु पाठक ! क्या दानी भी कभी क्षीण हुए हैं । गीता में भी कहा है—“न हि कल्याणकृत करिचत् दुर्गतिं तात गच्छति ।” वे तो ज्यों-ज्यों दान करते हैं, त्यों-त्यों फूलते ही जाते हैं । अतएव कटि की दाहबाला अनुमान अकाट्य है । अब एक मूर्ख-नंद और बाकी रहे । आपका नाम है मदन महाराज । आप ‘महा’ होने से यौवनराज के भी सरताज ठहरे । आपको इन सबकी बढ़ती देखकर चैन नहीं है । आप इन पर जितनी जल्दरी हो सके, कर लगाना चाहते हैं । आप अपना मनोरथ साधे बिना बेचैन हो रहे हैं । इतना लोभ और यह अल्दबासी !

हंसों की हँसी

किकिनी की झनझर सुन, हम गए निदि कोर ;

मोती बाँके हंसत हा, लगे चुपन का ठौर ।

बड़े-बड़े बुद्धिमान् भी बाज वक्त बेवकूफ बन बैठते हैं । यही हाल हमारे नीर-सोर-न्याय करनेवाले हंसों का हुआ है । कोई अभिसारिका नायिका अपने प्यारे से मिलने जा रही है । वह किसी सरोवर के समीप से होकर गुजर रही है । उसी किकिनी की मधुर रटन सुनकर हंसों के मन नाचने लगे । उन्होंने समझा 'कोई सुग्ध मरालिनी अपने ढोल से बिछुड़कर इधर आ निकली है ।' सबके सब कामोन्मत्त हो बैठे और इस नव-श्रधू को बरने की उत्कंठा के कारण बिना कुछ जाने-बूझे चर दौड़ पड़े । 'कहीं वह नवेली पहले पहुँचनेवाले को ही पसंद करे ।' यह खयाल करके वे अपनी असली चाल छोड़ घुड़दौड़ दौड़े ! परंतु पलक झपटे ही घोखे की टट्टी टूट गई ; आगे जाकर देखते क्या हैं कि कोई सुंदर स्त्री सोलहों शृंगारों से सज-पजकर मरालिनी की तरह मतवाली और धीमी चाल से चल रही है । मोटे और सुडौल नितंबों पर कटि से लटककर पड़ी हुई किकिनी उसकी पीन जंघाओं के आगे और

पीछे चलायमान होने के कारण हंसिनी की-सी मधुर रटन लगाए है ।

नायिका ने, मालूम होता है, पहले इनकी समझ की बड़ी सराहना सुनी थी । अतएव ऐसे समझदारों को मोदवश बेवशूक बना देखकर उसकी हँसी न रुकी । वह खिलखिलाकर जोर से हँस पड़ी । उसके हँसते ही चारों ओर मोतियों की-सी वर्षा होने लगी । हंसों ने अपनी खिंदगी में ऐसे मोती कभी न देखे थे । अतः वे बड़े ही व्यग्र होकर मोती चुगने लगे । परंतु पाठक, यह लो, वे एक दफा ठोकर खाकर भी न चेते और फिर धोखे में कैसे । आइए, इस बार हम तुम मिलकर इन हंसों की हँसी उड़ाएँ ।

पड़ों की पढ़ाई

कुच कंगाल कामाई बंद, कुच कठोर हुने नैन ;

नितम्बन मोटे होत तो, होत न कटि कद चैन ।

वय की वृद्धि होने के साथ-साथ केश, कुच, द्युति, नैन और कपोल भी बढ़े । केश लंबाई और चिकनेपन में और कुच मुटार्द और काठिन्य में बढ़े । जिधर देखो उधर ही रोम-रोम से कांति मलकने लगी । आँखों में हर्ष, चपलता और प्रेम की वृद्धि हुई और कपोलों का तालित्व बढ़कर जी को ललचाने लगा । अपने मित्र और सहायकों को यों होड़ाहोड़ी बढ़ते देख नायिका के मन में निवास करनेवाला मनस्विज भी बढ़ा—अर्थात् उसकी कामेच्छा भी बढ़ी । फिर तो अत्यंत धन की वृद्धि होने से जो उपद्रव होते हैं, वे होने लगे । कुचाली काम की कुप्रेरणा से कठिनता से कमाए हुए कीमती रत्नों को दोनों हाथों में, करने ही के कंगालों को, लुटाना शुरू कर दिया । फिर तो छद्मावा खाली होने में क्या देर थी ।

पाठको, ऐसे रत्नों को बढ़े धन के साथ रखना चाहिए । जो कल कुछ भी नहीं थे, वे ही आज धन के मद में घूर हो कर, अपने निकट रहनेवाले मित्रों से बोलते तक नहीं । उन्हें

सहायता देना तो दूर रहा, उल्टा दुःख ही देते हैं । इसी मद में मस्त होकर कुच इत्यादि ने भोली-भाली, लचकीली और कोमल कमर पर जुल्म करने को कमर कस ली । वे उसे बुरी तरह से पावों तले कुचलने लगे । कठोर-हृदय काम में कढ़कर उस गरीबिनी की सूत्र दुर्दशा करवाई । वह बेचारी मुश्किल से टूटती-टूटती बची । देखा आपने, जो कल उसी पतली कमर से पाले जाकर बड़े और जिनका वह अभी तक भला ही चाहती है, वही आज उसके बैरी हो गए ।

पाठक ! आजकल ज़माना बहुत घुरा है । परंतु इस संसार में सच ही कुच इत्यादि की तरह कुतघ्न नहीं होते । बहुत-से सज्जन ऐसे भी होते हैं, जो अपने मित्रों की भरसक मदद करते हैं । सच है, बड़े लोग अपनी बड़ाई को नहीं छोड़ते । नितंबों की भी इन दिनों बड़ी वृद्धि हुई थी । वे इतने समृद्धिशाली हो चले थे कि कुच इत्यादिकों को भी उनके सामने नीचा देखना पड़ता था । परंतु इन्होंने अपने इस बल का दुरुपयोग नहीं किया । इन्होंने चीण कटि-जैसे दीन-हीन व्यक्तियों की पहलें सुनाई की और उनको अपने सर पर स्थान प्रदान किया । खुद उनको सहारा देकर उनको दुष्टों के अत्याचारों से बचाया । सच है—“बड़े बड़ाई ना ठर्जें ।”

अनोग्वा अरविंद

सूर देखि फूलें कमल, माझ पदे कुमनाहि ।

चाद निरखि पिय मुरति करि, सुभग कमल खिन जाहि ।

सूर्य को देखते ही कमल खिल जाते हैं और उसके असल होने ही सजुचा जाते हैं। सब प्राणियों को चाहिए कि इसी प्रकार अपने पोषक और मित्र के सुख और दुःख में हृदय तथा शोक प्रकट करें। जैसे सूर्य अपने अधीन कमलों को खुश करता है वैसे हमें भी अपने अधीनों तथा दूसरे व्यक्तियों को प्रसन्न रखना चाहिए। इससे संसार में सुख की समृद्धि होकर आनंद की अतिवृद्धि होती है। देखिए, सूर्य को मुखी देगाकर सरमित्र फूला नहीं समाता; कमल का विकास देगाकर धमरों को हर्ष होता है, और इन सबको देखकर संसार के अखिल प्राणियों को अकथनीय आनंद आता है। इसी तरह सूर्यी खुद बगुन उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। अतएव हमें हमेशा हर्षित रहकर स्वर्गानंद की प्राप्ति महज ही में कर लेनी चाहिए। हमें सूर्य के समान संसार के किमी-न-किमी कोने पर निरर्थक प्रति प्रेम-प्रकाश डालने रहना चाहिए।

अब तब तो कमल दिन में ही ओगों का उपचार करने दे,

परंतु अब कविजी ने अपने प्रेम-प्रकाश के प्रभाव से एक ऐसा पद्म पा लिया है, जो रात को भी विकसित होकर, उन अरविंदों से कहीं ज्यादा जगत् का भला करता है। यह नायिका का कर्तिमान और सुंदर हृदय-कमल है, जो चाँद को देखकर और नायक की सूरत की सुरति करके खिल उठता है, और चारों ओर हर्षरूपी मधुर मकरंद की वर्षा करके मन-मधुप को मोहित कर लेता है। पति के प्रगाढ़ प्रेमरूपी प्रखर प्रभा-कर के प्रकट होकर अपनी प्रभा का प्रकाश फैलाने पर ही इस पवित्र पद्म का विकास होता है। सत्य है, प्रेम में बड़ी भारी शक्ति है।

प्रेम का प्रतिकार

गज लाखि कदरावन दरत, दरन दीन दुख मैंन ।

जंघ जुगल कदरी किए, चलत गजहि दुख दैन ।

आजकल संसार में चारों ओर अन्याय का अंधकार छाया हुआ है । 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाली कहावत अक्षरशः चरितार्थ हो रही है । रक्तक ही भक्तक बन गए हैं । निर्बल की कोई नहीं सुनना ; किसी कवि ने सत्य कहा है —

तबे महायुद्ध मवन के, निबल न कोउ महाय ।

पवन जगावन आंग को, दीपहि देत बुझाय ।

सत्य है, सबल में सब डरते हैं और उसकी महायत्ना करने के लिये मर्दा सजग रहते हैं । औरवालों की चरदस्तो और शक्तिमों के जन्म का कुछ ठिकाना नहीं॥ 'यक्र चंद्रमर्दि प्रमै न राहु' — राहू भी टेढ़े चंद्र का प्रास नहीं करता, किंतु उसके सीधा होने पर ही, पूर्णिमा में, प्रमत्ता है । केने के वृक्ष बड़े ही कोमल तथा निर्बल होते हैं । अतः मदमग्न हाथी अन्यान्य वृक्षों, मृगों और मशकृत वृक्षों में सर नलगाकर बेपारं इन्हीं लपटों का नारा करने हैं । केने के वन-के-वन विध्वंसित कर जाते हैं । जितना गाने बजाना गाने हैं, बागों का यों ही पड़ा गया

करता है। उन्हें निर्बलों पर अत्याचार करने में ही आनन्द मिलता है।

परन्तु संसार एकांगी नहीं है; उसमें जहाँ ऐसे-ऐसे जीव हैं, वहाँ बहुत-से दुस्त्रियों का दुःख दूर करनेवाले दयालु और उदार पुरुष भी मौजूद हैं। हमारे मदन महाराज भी दोनों के दुःख को नहीं देख सकते। अतः उन्होंने कदली-खम्भों को नायिका की जघाओं का स्वरूप दिया, जिनके सौंदर्य-भार से भूम-भूमकर चलने के कारण वह नायिका अपनी मतवाली चाल से मस्त-से-मस्त हाथियों का भी मद घूर्ण करने लगी। उसने उन्हें अपनी चाल से मार कर दिया। उनके दुःख-दर्द की सीमा न रही। यों कदली-खम्भों ने नायिका की जघा बनकर हाथियों से उनके अत्याचारों का बदला, बदले में अत्याचार किए बिना ही, चुका लिया—उन्हें उचित दंड दिया।

१३५ विना ३

१. १००० ॥ १००० ॥ १००० ॥ १००० ॥ १००० ॥

संस्कृत-विभाग

[illegible]

परा इनके दाद-बाद का भी विश्वास कर सोंजिए । सम्मानित दिये दिये दर्शन का हा है । उनको लिखा जाने के शिरो अर्थात् मुकल्ल-अवारी से सजा दार्थी है, जिसकी एक बैजक

पर वे बैठे हैं और दूसरी बैठक खाली है। और यही है वसंत के लिये। मंगल समय है। अतः हाथी भी खूब सजा हुआ है। पैरों में जो पायल पड़े हुए हैं, उन्हीं की आवाज नायिका के पैरों की रम्य ध्वनि के सदृश है। हाथी बड़ा भूम-भूमकर मतवाली चाल से चल रहा है, जो पीन जंघ-युगलधारी नायिका की युवावस्था की मतवाली चाल की हूबहू नकल है। यह सवारी जा रही है वसंत को लिवा लाने के लिये, और वही वसंत नायिका का उद्दिष्ट उपवन है। इस प्रकार जाती हुई यह कामिनी गज-पीठ पर विराजमान कामदेव से कमनीयता में कुछ कम नहीं है। तभी तो कविजी ने उत्प्रेक्षा करके हमारे हृदय में आनंदोत्कर्ष उत्पादित कर दिया है। धन्य कविता-कुमुद-कलानिधि !

महामुनि मन

एषो वाच नम आस्य मेमन्मोम निय क्षुति विनिर्गति ।

मनमुनि नादि दुल्लभ, मास्य रिक्तावन अस्ति दुष ।

नील गगन में विचरण करता हुआ, आकाश-गंगा में स्नान करके और उसमें उगे हुए अनूठे-अनूठे कमलों का रसास्वादन करके, मन-मुनि ऊँची-ऊँची थोटियोंवाले पर्वतों पर उतर पड़ा । और वहाँ से नीचे के मैदान की उपजाऊ उपत्यका को देख-कर नीचे उतरा और हाथियों तथा सिंहों के निवासस्थान, घने वन को पार करके, पद्म-पद्म के नीचेवाली लाल और सुकोमल जगह पर आ टिका । फिर मालूम नहीं इतने ऊँचे से उतरने की थकावट के कारण या सिंह इत्यादि वन्य जंतुओं के डर से अथवा पद्मल के अनुराग के कारण, उसने ऊपर चढ़ने का नाम तक न लिया । योगिराज की तरह दृढ़ासन मारकर वहाँ बैठ गया । आँखरूपी अप्सराओं के लाख रिक्ताने पर भी वहाँ से नहीं हिला, तप भंग नहीं हुआ । हमें तो यही मादम होता है कि उस उत्तम स्थान को उपासना के उपयुक्त समझ कर वहाँ सिद्ध योगासन लगा लिया—समाधिस्थ हो गया ।

हम तो इन मन-मुनि को सबसे श्रेष्ठ योगिराज मानते हैं ।

देखिए, जिन चरणतल को योगिराज कृष्ण तक ने अपने मस्तक पर सादर धारण किया, भला उन चरणों की उपासना करनेवाले और उन पर लुठनेवाले महामुनि मन के महत्त्व की महिमा का हम कहीं तक बखान कर सकते हैं। हमें तो कहीं इन चरणों के रजकण मिल जायें तो बस पर्याप्त हैं।

लालन की लाली

१५४ 'कई साल पर, कई गद नदवन :

जम जग' जेमन जगु जग' दंत जगन ।

राधा लाल रंग की मारी पड़ने हुए खड़ी हैं। बड़ी मुश्किल प्रतीत होती हैं। इनने ही में बड़ी कृष्ण महापति का पड़ोस। प्रिया के रूप-लावण्य को देखकर मनोहर मुग्ध हो गए; विरोधनः लाल साड़ी की शोभा का निरखकर खुद प्रेम की लाली में मगधोर हो गए। प्रेम-विह्वल होकर, लपककर, प्यारी को गोद में उठा लिया। उस समय कृष्ण की गोद में राधा इस प्रकार शोभा देती हैं, मानो सायंकालीन नभ की लाली में सूर्य अस्त हो रहे हैं। कृष्ण सायंकालीन नभ हैं। राधा की लाल साड़ी नभ की लालिमा है। साड़ी में से राधा का मुख अस्त होते हुए सूर्य के सदृश प्रतीत होता है। नेचर-निरीक्षकों से यह बात छिपी हुई नहीं है कि अस्त होते हुए सूर्य में चक्काचोंच करनेवाली तेजी न रहकर लाली ही अधिक दिखलाई देती है। वर कृष्ण की गोद में लज्जा के कारण, वैसा कि स्त्रियों में स्वाभाविक है, राधा का मुख लाल हो गया है। अतः राधा के तत्कालीन मुख-रुमल को

अस्त होते हुए मूर्त्य की उत्प्रेक्षा वास्तव में अनूठी है। 'प्रेम' को अनेक धन्यवाद कि जिसकी बदौलत हमें राधा-कृष्ण की ऐसी सुंदर माँकी के दर्शन हुए हैं।



रंग में रंग

जनकल है ॥१५॥, देह जाने कमलै ;

रंग व ॥२॥ ॥१॥ वरन है, प्रिया मग अनुहारि ।

अहा ! क्या ही सु दूर माय है । प्रेमियों को परमेश्वर ने न जाने कैसा कोमल और स्नेह-सिन्धु हृदय दिया है कि वे अपने प्यारे को प्रत्येक वस्तु को वसी की मूर्ति के सदृश जानकर उसके हृदय में स्थान देते हैं । प्रिय की निर्जीव वस्तु को भी सर्जीव मानकर उसमें और अपने प्रिय में कोई भेद नहीं देखते । या यों कहिए कि उनके प्रेम में यह शक्ति है कि जिस वस्तु में चाहें, वे प्रिय के दर्शन कर सकते हैं ; जिस निर्जीव को चाहें उसके बल से सर्जीव कर सकते हैं ।

सच है, प्रेम की महिमा अपार है । साक्षात् प्रेम के अवतार भगवान् श्रीकृष्ण को ही लीजिए । उनका व्यापार तो देखिए ; प्रेम उनसे क्या करवाता है । प्राणप्रियतमा राधिकाजी की तन-स्रवि कनक के समान पीतवर्ण की है । ये तो उनको घड़ी ही प्यारी लगती हैं । पीतवर्ण भी उनको बहुत रुचता है । क्यों न रुचे, यह तो उनके हृदय की प्रतिमा राधाजी का ही वर्ण है । यही कारण है कि इस पीले रंग ने उनके हृदय में अति ब

स्थान पाया है। वे तो इसी में सब सौंदर्य सागर को भरा पाते हैं। जहाँ जाते हैं, पीत-ही-पीत पाते हैं। सचमुच, प्रेम का पंथ निराला है।

पाठक, आपको अब यह तो मालूम हो ही गया होगा कि श्याम नंदलाल को पोतवर्ण क्यों अत्यंत रुचिकर है। अब आप उनके पीतांबर धारण करने का रहस्य भी समझ जायेंगे। और, और रंगों के सामने उनका आँख का पीला रंग ही अच्छा लगता है। जहाँ उनको कोई पीली वस्तु मिली कि आत्मा फड़क चढ़ती है और मन प्रेम महानद में रांते खाने लगता है। उसी समय राधिकाजी की मनमोहिनी मूर्ति, आँखों आगे मुसकिराती हुई, खड़ी हो जाती है। वस, उनको और क्या चाहिए। यह कारण है कि कंसारि पीले वस्त्र धारण करने में ही सुख पाते हैं; उन्हें और रंग के वस्त्र ही नहीं रुचते। भला क्यों रचे? वे तो पीले वस्त्र के रूप में ही राधिकाजी को अपने अंग से लिपटाए रखते हैं। धन्य है प्रेम, नू धन्य है; तेरी महिमा कहीं लो बखान करे। अब तो केवल यही जपते हैं—
प्रेम, प्रेम, प्रेम !

कवि की कक्षा

“ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ” इति मन्त्रं पठन्तः ।
 “ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ” इति मन्त्रं पठन्तः ।

[illegible]

सषमुष कवि ने इस शब्दे में कमाज कर दिया है। इसके सामने बहुत-से कवियों की तो दाज हो न गजनी होगी। पाज ललना का सषकीला शरीर, गंभीर नाभि-कूप, सुंदर लहर खाती हुई त्रिपली, पेट पर की तीखी और धमकीली रोमावली तथा पर-

तल तक लटकते हुए बेणी के बालों ने कवि को मालामाल करके निहाल कर दिया है। निराले ही ढंग की कमान है। भला जब शिकारी इस कमान पर बेणीरूपी, कभी न टूटनेवाली प्रत्यंचा चढ़ाकर, रोमावलीरूपी वाणों से भरा हुआ त्रिवलीरूपी निपंग लेकर मतवाली चाल से चलेगा और काल को देखते ही रोम-शर को नाभो नली में डालकर और धनुष पर चढ़ाकर फान तक खींचकर तानेगा, और जो कहीं काल के भाल को ताककर तीर को छोड़ देगा तो फिर उसका घचना कठिन ही नहीं, असंभव हो जायगा। फिर बेचारे मनुष्य, जो थोड़े काल में ही कराल काल के जाल में फँसकर उसके विशाल गाल में शर्क हो जाते हैं, कहाँ जायेंगे ? वस, यदि यह धान तन गया तो समझ लो इन गरीब जीवों का तो अकाल-सा पड़ जायगा। रहम करे इन के हाल पर नंदलाल !

ओस या आँसू

ओस बूंद जे हैं नहीं, जो इत-उत दिखलात ;

आँसू गिरत गुलाब के, निरखि प्रिया को मान ।

गुलाब के पुष्प पर इधर-उधर जो बूँदें पड़ी हुई हैं, वे ओस-कण नहीं हैं, किंतु नायिका विशेष के शरीर की सुंदरता देखकर, डाढ़ के कारण, उसके आँसू आ रहे हैं । वह यह देख कर बड़ा दुखी हो रहा है कि नायिका सौंदर्य में उससे बढ़ी-बढ़ी है ।

बहुत संभव है यही बात हो ; परंतु कोई उस गुलाब से दरयास्त तो करे कि दरअसल माजरा क्या है ? मुमकिन है, ये हर्ष के आँसू हों । गुलाब को अपने ही सहजातीय दूसरे गुलाब को देखकर बड़ी भारी खुशी हुई हो कि जिससे आँखों में प्रेमाश्रु टपकने लग गए हों । लेकिन अगर ये आँसू डाढ़ के कारण आए हैं, तो यह गुलाब को नातजुर्वेकारी है । यह सगसर उसकी मूर्खता है । अकेले गुलाब ही ने सुंदरता का ठेका थोड़े ही ले रक्खा है । इस पृथ्वी पर एक-से-एक बढ़कर सुंदर मिलते हैं । अभी बचारे गुलाब ने देखा-भाला ही क्या है । यों दूसरों की सुंदरता देखकर यदि वह रोंने लगंगा तो अपनी सुंदरता से और हाथ धो बैठेगा । मान जाओ, मियाँ गुलाब !

यह रोना-पीटना क्या सीखे हो ? हवा के साथ खूब अठखेलियाँ करो और मजे लड़ाओ । थोड़ा-सा हमारा भी स्वार्थ है, इसलिये कहते हैं, बरना हमें क्या मतलब है । जैसा चाहो वैसा करो । बस, केवल इतना ध्यान रखना कि रोते-रोते आँसुओं के साथ अपनी सुगंध को न बहा देना, बरना दूसरे घरों में आग लग जायगी । तुम्हारी सुगंध के प्रेमियों के लिये मामला नाजुक हो जायगा ।

मयंक का मोह

रात कौन किय आय इक, सरिता जल मई नार ;

भयो मुग्ध छवि निरखि शशि, सोजत रूप अगर ।

क्या आपने कभी शुक्रपक्ष की रात्रि को किसी सरिता के तट पर खड़े रहकर देखा है कि कोई चमकीली वस्तु तीव्र गति से इधर-उधर दौड़ रही है ? और देखकर भी कभी सोचा कि यह है क्या ? अगर नहीं, तो सुनिए । ये चंद्र महोदय हैं । प्रेम के मारे हैरान हुए इधर-उधर बाबले-से फिर रहे हैं । इन्होंने इसी सरित-जल में अपनी एक प्रिय वस्तु खो दी है । उसी की तलाश में ये दौड़ रहे हैं । यात यह है कि एक रात्रि को एक चंद्रमुखी नायिका मखियों सहित इस सरिता में जल-फ्रीड़ा करने आई थी । चंद्रदेव की इसकी सौंदर्य-शोभा पर आँख लग गई । वे इसकी छटा पर दिलोजान से किदा हो गए । उस समय तो अपनी प्राण-प्रतिमा को देखकर मन-ही-मन उस स्वर्गानंद को लूटने लगे, जिसको किरले सौभाग्य-शाली पुरुष ही पाते हैं । वे इसकी अठगोक्षियाँ देखकर पागल हो, निस्त्वम्भ भाव से, अनिमेघ नेत्र इसकी छवि को निरखने लगे ।

इधर समय बहुत हुआ जान, नायिका जल के बाहर निकली और सखियों सहित अपने स्थान को चल पड़ी। चंद्र महाराज का दिल लेकर वह चली गई। यहाँ ये महाशय अभी तक उसी के ध्यान में मग्न थे। इनकी दुःख की पड़ी अभी शुरू नहीं हुई थी। इनको तो यह भी खबर नहीं थी कि जिसकी सुधि में ये लीन हैं और जिसकी प्रतिमा मन में देखकर ये मन के मोदक उड़ा रहे हैं, वह तो कभी की वहाँ से चल दी। आखिर इनकी मोह-निद्रा जाग गई। अब तो इन पर दुःख का पहाड़ टूट पड़ा। कहाँ जायँ, किधर जायँ, प्रिया को कहाँ दूँ ? ध्यान में ऐसे चूर थे कि जाते वक्त उसकी राह भी नहीं देखी। इनको तो इतना ही स्मरण था कि वह जल में केलि कर रही थी। वस, अब क्या था, लगे बिजली की गति से इधर-उधर जल में दौड़ने। सख सखिता धान ढाली, पर वह न मिली। क्या किया जाय ? बेचारे चंद्र की इस दयनीय दशा पर दया हो आती है। अगर किसी ने नायिका को जाते देखा हो, तो बतावें, जिससे इस सुषांशु की प्रेमवृषा बुझे। देखो, ये इस शीघ्र गति से इधर-उधर भागते हैं कि यह पहचानना कठिन है कि एकरूप होने पर भी अपनी द्रुतगति से अनेक-रूप लक्षित होते हैं, या वास्तव में ये अनेक रूप धारण किए हुए खोज कर रहे

हैं, त्रिगमे गोज में सुर्षाता हो और समय थोड़ा लगे । यह सोचना भी अयथार्थ नहीं है, क्योंकि चंद्र तो मायावी हैं ही, वे जघ धाँदे तब सासों रूप धर लें । पर, "बीती ताहि बिसारि दे, आगे की सुधि लेंद्र ।" इनको राह कौन बतावे; नाविध्य का उस समय जाते तो किमी ने न देखा होगा । यदि ऐसा ही है, तो ये अपनी धुन में मर मिटेंगे । इनको इस मंत्रज्य से कौन हटा सकता है । इनकी दुस्ती दशा पर हमें भी सदाउ-भूति प्रकट करनी चाहिए ।

छवि की छदाम

विधि के हाथों सकल छवि, सोलह आने दाम ;

भित्ती प्रिया कहें शेष सब, जग कहें एक छदाम ।

विधि के हाथ में पूरी सोलह आना सुंदरता थी । उसमें से उन्होंने सारे संसार को एक छदाम सौंदर्य देकर बाक़ी सब छवि प्रियाजी को दे डाली । फिर भला प्रियाजी की सुंदरता के सब क्यों न गीत गावें । जग के हिस्से में केवल एक छदाम छवि आने पर भी खूबसूरती के वे नायाब नमूने नज़र आते हैं कि जिनकी कोई तारीफ़ नहीं की जा सकती । फिर भला जहाँ एक छदाम कम सोलह आना रूप है वहाँ की शोभा का तो क्या कहना है । तभी तो कृष्ण सहस्र योगी-रत्न प्रियाजी के चरणों में शीश धरते थे । इसी रूप के बल पर तो प्रियाजी ऐसा मान किया करती थीं कि मनमोहन के लाख मनाने पर भी नहीं मानती थीं क्यों मानतीं, जब वे यह जानती थीं कि अंत में मोर-मुकट उनके चरणों में लुठेगा । सच है—“है प्रभाव सौंदर्य को सब वै एक समान ।”

प्रियाजी में सौंदर्य इतनी प्रचुरता से पाया जाता है, यह सुनकर कदाचित् हमारे नई रोशनीवाले भाइयों के दिलों

१०५

रति-रानी

में भी प्रियाजी को मींदर्योरामना को दरज से देखने को
इच्छा हुई हो । मगर ये बेचारे मींदर्य को क्या परखेंगे ।
इनकी आँखों में तो 'धीनम की, मायलो', 'हेलन' और
'मेरी कीन आव स्काट्स' की सुंदरता समाई हुई है ।

अजीब औपधि

विधि को यह अचरन महा, तियल्लुधि में प्रकटाय ;

नयन-वान पायल करें, अघर-सुधा हरपाय ।

पाठ को ! आपने बड़े-बड़े कौतुकागार देखे होंगे; उनकी सैर की होगी, परंतु क्या आपने कभी विधि के इस संसार रूपी अद्वितीय वृद्ध कौतुकागार की विचित्रताएँ देखी ? अगर नहीं, तो आइए, कविजी ने कृपा कर इस कौतुकागार की एक विचित्र वस्तु दिखलाने का वादा किया है। समस्त कौतुकागार को तो देखना कठिन काम है; परंतु लीजिए, आज तो इस 'ग्नूशियम' की एक ही चीज देख लीजिए। उसकी विशेषता पर विचार कीजिए और तब अनुमान कर लीजिए कि इसी प्रकार की अपरिमित वस्तुओं की आगार, यह कौतुकशाला क्या ही कारीगरी का नमूना होगी।

सुनिए, आपने संसार में बड़े-बड़े वैद्य, डॉक्टर, हकीम, देखे-सुने होंगे; मिपक्रब्रों से भेंट की होगी; 'एलोपेथिस्टों' और 'होमियोपेथिस्टों' का नाम सुना होगा। इनका कार्य देखकर यह भी जाना होगा कि ये अपने-अपने अनुभव के अनुसार

ओपधियाँ देकर घोमारों का मर्ज दूर करने की कोशिश करते हैं। परंतु क्या, आपको याद भी पड़ता है कि, कहीं आपने कोई ऐसा वैद्यराज देखा है, जो क्षति पहुँचानेवाला भी हो और फिर ओपधि-प्रयोग द्वारा अच्छा करनेवाला भी हो। हमें निश्चय है कि आपने ऐसी वस्तु सजीव और निर्जीव सृष्टि में कहीं न देखी होगी, जिसमें मारण और तारण के विरुद्ध गुण एक साथ हों। अच्छा तो ध्यान देकर सुनिश्च आपकी इस चर्त्कटा को कबिजी पूरा करते हैं। वे कहते हैं कि अब इन डॉक्टरों का पेशा नष्ट हुआ समझो, क्योंकि सब काम विशेषतापूर्वक एक ही दवा से निकल जायेंगे। यह दवा स्त्री के सुमुख रूपी शीशी में रक्खी हुई है। इसका अजीब गुण यह है कि नयनवाणों द्वारा घायल कर यह इधर मारण का कार्य करती है, तो उधर तुरत ही अधरसुषा-पान रूपी भरहम को उस घाव पर लगाकर बचाने का कार्य करती है। अच्छा हुआ, जिस विधि ने इस प्रकार का रोग बनाया, उसी ने साथ ही साथ, मनुष्यों पर दया कर, अच्छी और अच्छूक ओपधि भी बता दी। यही नहीं, उन्होंने दवा को इतना सुलभ कर दिया कि बिना प्रयास ही, पास ही मिल जाती है। जिससे कि रोगी को बहुत काल तक दुःख नहीं भोगना पड़ता। ऐसा न होता, तो भला नयनवाणों से पायल

होकर कोई किसी प्रकार बच सकता या ? विधि की इस दूरदर्शिता और परोपकार की हम कहीं तक प्रशंसा करें ।

पर आप ही क्रिदा हो गई हो। यह बहुत संभव है, क्योंकि यह लटरूपी नागिन बड़ी बुरी होती है। कोई आश्चर्य नहीं, यदि इसने अपने आपको ढस लिया हो। यह अवश्य कोई खास नागिन होगी। मामूली नागिन का तो यह काम नहीं है। जो नायिकाएँ इस प्रकार लटरूपी नागिनें पालती हैं, उनको चाहिए कि इनको अपनी निगरानी में रखें, क्योंकि ये बड़ी छतरनाक हैं। खुद अपने आपको ढस लेती हैं। फिर भला गौर तो इनसे बच ही क्या सकता है ?

मान-मोचन

नागिन री प्रिय ! पीठ पे, बोलि सठे धनश्याम ;

हरबराय उठि मान तजि, पिय सो लिपटी बाम ।

सुनते हैं गुरु बिना ज्ञान नहीं आता । इसी बात को शास्त्रों ने भी पुकार-पुकारकर कहा है । जहाँ कहीं आप किसी पंडित को देखें, तो पूछने पर पता लगेगा कि उनके कोई-न-कोई आदरणीय गुरुजी अवश्य रहे हैं । परंतु इसके विपरीत, महाकवि प्रेम के प्रेम-साम्राज्य में विद्या बिना गुरु के ही अच्छी तरह आ जाती है । आप पूछेंगे कि यह तो बड़ा आश्चर्य है; भला, विद्या भी कहीं बिना गुरु के आ सकती है ? आप एकलव्य का दृष्टांत देकर प्रमाण भी देंगे । परंतु क्या हो, आपके ये सब प्रमाण यहाँ किसी काम के नहीं हैं ।

अब सुनिष्, नीति, चालबाजी और चतुराई ये ऐसे विषय हैं कि प्रेम-साम्राज्य में बिना सिखाए ही आ जाते हैं । लेकिन इन्हीं विषयों को सीखने के लिये आजकल बड़े-बड़े गुरुओं के पैरों पर शीश झुकाना पड़ता है । इन्हीं की प्राप्ति के लिये देश-देशांतर घूमना पड़ता है । इस विद्या को आज-कल लोग डिप्लोमेसी के नाम से पुकारते हैं ; और इसका

अध्ययन बड़ी धूमधाम के साथ हंगलैंड की एक-से एक कई जगहों में होता है । तब कहीं जाकर यह विद्या पर दण्ड कर पाती है । परंतु शतना करने पर भी बड़े-से-बड़ा डिस्कोमेट प्रेम की चाल देखकर चकराने लगता है ।

देखिए इसी प्रकार की एक चाल का यही भी है । राधिकाजी ने कृष्णजी से, प्रेम-कहाव कर, ठान लिया है । वे प्रिय की सेज पर, तन छीन मन मग्न मुग्ध का रूप बदले पड़ी हैं । कृष्णजी से प्रिया का यह सहन नहीं हो सकता । परंतु ये उन्हें सामग्रायें भी तो निमुन से । वे ही तो इनके कोप के कारण थे । अतः एक पल ऐसी चाली जिसमें मागला इधर-का-उधर हो गया । चाल की तो मुनकर ही बड़े-बड़े शक्तिशाली नीलि-कुराज मनुष्य मर मुत्तमाने लागेंगे । दिया यह कि मुन केरी हुई शक्तिशाली की पीठ पर पड़ी बेणी का देश, शक्ति की सुधि का, एकदम बोझ बड़े—“नागिन ही प्रिय ! पीठ पै ।” अब क्या था । भला लगा कहने पर स्वभाव-भोर कागज-दुर्गा राधाजी छिन्न प्रचार चुन रहनी ? वे तो मारे हर के काले चरित्र, और एकदम बिना गोपे-गामने मान की चाल की त मानकर शक्तिशाली से मुन के । कृष्णजी के यह ही राज हो । मान सब दूट गया । पूर्व के प्रेम की शक्ति

मान के मंजन से साफ होकर और ज्यादा जग-मगा चठी । पाठक, देखा, इसे कहते हैं चतुराई; इसे ही कहते हैं मस्तिष्क की कार्य-उत्परता । यही है लखकोटि की डिप्लोमेसी या चालबाजी । अब सोचिए, क्या कृष्ण ने यह विद्या कहाँ सीखी थी, जो इसमें ऐसे निपुण निकले ? नहीं । तो फिर धन्यवाद दीजिए प्रेम को, जिसकी बदौलत यह अनायास ही प्राप्त हो जाती है ।

कलानाथ का कलक

देहि कलनाथि व । चैत्र दिव, रवाम विचार्य देन ।

नो समान बड़ मान करि, विरविन की पुन देन ।

गगन में अंशुदेव ताराप्या के साथ विचार का रवे
नाथिदा अपने यनिदेव के साथ प्रकृति का निरीक्षण
रही है । चाँदनी चिह्न रही है, मानो रत्न का विहीन
दिया है । नाथिदा अंशु की क्षति देखकर चढ़ी प्रसन्न हो
है । तारा की शोभा को गगनने हुए अपने साथ से पुन
“हे कलनाथ ! अंशु का हृदय रवाम किम कारण से क्षिप्त
होता है ?” साथ ही बड़ा अनुरोध । अपने समान कि क
बड़ अथवा अन्यथा हृदय का है । देना की नाथिदा
अपने बड़ नग दिया करती की । अतः वह, मान
अन दुर्दान्त की की से उत्पन्न मान में हम प्रचार, अ
अन में कलक—“हे अंशु ! वह तेरा ही समान मान का
क्षिप्त होनी की बड़ दुःख देता है । कल का वह क
है कि कलक। हृदय का हृदय हो गया । मान का मे बड़ा दुःख
मान होता है । इस मान की कारण अंशु की क्षिप्त
होता कलक कारण है । कलक मान में अंशु की क्षिप्त

जिस तरह तू मान करके मुझे दुःख देती है, इसी तरह यह विरहीजनों को, जो बेचारे विरह के कारण पहले ही से दुखी होते हैं, मान करके जलाता है । इसीलिये अब अपने कर्मों का फल भोगता है । मान करना महापाप है । और अपराधों को चाहे परमात्मा क्षमा कर दे, परंतु सुनते हैं कि मान-ऐसे घोर पाप को वह कभी क्षमा नहीं करता । अतः आज से तू भी भविष्य में मान न करने का प्रण कर ले ।”

छूब, नायक महाराज ! जो कुछ कहना है, दिल खोलकर कह लीजिए । फिर ऐसा मौका नहीं मिलेगा । संभव है, तुम्हारे उपदेश का असर हो जाय । तुमने लेखर तो छूब ही पटकाया है, मतलब की सब बातें कह डाली हैं । अगर फिर भी नाकामयाबी हुई, तो तक्रार की बात । किंतु ऐसी हालत में तुम मात्र को एक निराला ही आनंद समझ लेना ।

चाम विधु

अब तो मजदूरी मजदूरी, देन या दे के दान;

बाँटे दान तो है गया, बेद बाँटो चाम ।

मुन्ने हैं, राजनीति का प्रकार की होती है—भाम, एव
दह और भेद । इन्हीं के बल पर राजा अपने राज्य की
परिधिनि ठीक रख सकता है । परंतु क्या आप समझते हैं,
यह नीति सत्तार के राजाओं में ही होती है ; क्या उन्हें ही
इसका ठेका से रक्खा है ? अगर आपका ऐसा लक्षण है, तो
आप राजा पर हैं । आपका अभी प्रमत्ततावाद का क्या
नती है । वही तो हम नीति का असर प्रमा पूरा मान लेता
है । वही पर यह पुर परिमाण में प्रयोग में आती है । वही नहीं,
वही यह नीति सत्तार मजदूर ही होती है । राजाओं के राज
में वही दूरे यह चमो-चमो विजयवाक्य भी हो जाती है । वही
नीति के इच्छादरम-भक्त, कपल के होंट से आपकी मानव
दण्ड कि प्रेम से नीति का क्या खान है, और हमने क्या और
और प्रकार की नीति से क्या खान है ।

अतर्हिनी नीति का विचार ने वही कि है आपकी,
अब इस दान मान की होंट है ; दूसरी नहीं, हम जानें

कितनी-कितनी हानियाँ पैदा की हैं। इसी के कारण तो बेचारा सौंदर्य-जगत् का सिरताज सुधांशु वक्र-रूप हो गया है। जय इसने भी तुम्हारी तरह मान किया, तो यह दशा हुई। मान बहुत बुरी चीज है। तात्पर्य यह है कि ऐसा कहकर नायकजी ने यह ध्वनित किया कि मान से जिस प्रकार चंद्र टेढ़े हो गए, उसी प्रकार तू भी विकृतांगो न हो जाय। यह कहकर तो नायकजी ने आजीवनस्थायी भय का यह अंकुर नायिका को हृदयस्थली में जमा दिया, जो अवश्य फलीभूत होता। उनको नीति-निपुणता का यह नायाब नमूना है। दंड अर्थात् धमकी और सजा के सहारे राजा न्याय करता है, परंतु उसका न्याय कभी-कभी थिलकुल निष्फल होता है। पर यहाँ तो धमकी का फल आजीवनस्थायी और उद्देश्य-साधक हो गया है। एक ही बार की भृदु धमकी ने यह काम किया कि भविष्य में अनेक सुख में विघ्न डालनेवाले कार्यों का कारण मिट गया। बाद नायकजी, नीति इसी को कहते हैं।

मान-मर्दन

पिय अजहूँ आए नही, देहो लाखों मोरि ;

पिय आवत ही मान को, दियो लाख जिमि गारि ।

नायिका प्रियतम की प्रतीक्षा में बैठी है । समय बहुत पयास हो गया है, परंतु नायकजी अभी नहीं पधारे हैं । बेचारी के हृदय में रह-रहकर अनेक खयाल चठते हैं और तुरंत ही शांत हो जाते हैं । उनके न आने का कारण सोचती है, परंतु कुछ पता नहीं लगता ।

आज तक तो उसका यह विचार था कि मेरे प्रेम में वह आकर्षण-शक्ति है, जो उन्हें जय चाहे मेरी ओर खींच ला सकती है, परंतु आज इसके विपरीत होते देख, बगरी आराध्यों पर पानी फिर गया । सोचते-सोचते वह मन्त्रा बटो और लगी नायक पर कोप करने । सोचा कि आज आने ही उनको ऐसा आड़े हाथों लूँगी कि फिर इस प्रकार की राहगीर कमी न करेगी । फिर तो मुझे प्रतीक्षा करने का कोई मौका ही न आएगा । उसने तो सोचा था कि कंबल आज के महा-दुःख करने और ऊँचा-नीचा लेने से सदा का मर्मर और प्रति-दिन की प्रतीक्षा मिट आएगी । परंतु दृष्टा क्या, तो गुनिर ।

उसका यह मनोरथ सफल न हुआ । कुछ समय के बाद रसीले नायकजी मुसकिराते हुए दूर से इस ओर आते नजर आए । श्वर नायिका भी इस समय तक रोषाग्नि से खूब संतप्त हो चुकी थी । परंतु देखिए, इन दोनों की चार आंखें होते ही सब दृश्य ऐसे बदल जाता है, जैसे किसी चतुर मांत्रिक के मंत्र-कौशल से बिच्छू के काटने से तड़फते हुए की ठंथरा एक-दम मिट जाती है । जिस मान और रोष के बल पर वह नायक को घुरा-भला कहने का संकल्प कर चुकी थी, उसी मान और रोष को उसने इस प्रकार दिल से दूर कर दिया, जिस प्रकार मनुष्य किसी घृणित वस्तु का तिरस्कार सहज ही में कर देता है । जिस प्रकार लाख बहुत जल्दी ही आग के संसर्ग से गल जाती है, उसी प्रकार प्रिय के समागम से उसका भी मान तुरंत गल गया । देखिए, कुछ-का-कुछ हो गया । या तो अग्नि की तरह कोषाग्नि से प्रज्वलित-सी हो रही थी, या दूसरे ही क्षण में नायक से मिलकर इस प्रकार शांत हुई, मानो उस पर जल-पृष्टि हो गई हो । सचमुच प्रेम की लीला निराली ही है । इसने तो बहुत-सी मानिनियों के मान इसी प्रकार गला डाले ।

अगर प्रेम पृथ्वी पर न होता, तो यह समस्त संसार कलह-

पूर्ण होता । शान्ति, स्नेह और सौख्योपामना का रूप भी
 न आता । धन्य है प्रेम ! तेरी शक्ति मन्दार है । तभी तो कविजी
 ने कहा है कि प्रेम ही परमेश्वर है ।



दुतियों की दुष्टता

मान दुन्दुबो जो बाँल तिय, पिय सन पान्यो नाहि ।

अनिय। दुतिया प्रेम की, मुग्ध भाव भलकराई ।

प्रेम में मानलीला को देख-देखकर घटुन-से रसिकों के हृदय में खयाल उपजता है कि इससे रंग में भंग पड़ता है ; यह तो प्रेम का मन्त्रा मिट्टी में मिला देता है, और इस कलह से प्रेमियों के हृदय अत्यन्त दुःखित होते हैं । परंतु उनका यह विचार अचरशः सत्य नहीं है । भली प्रकार विचारने से यह सिद्धांत निर्मूल और धामक सिद्ध होगा ।

देखिए, संसार में गुणों के साथ-ही-साथ अवगुण भी न हों, तो गुणों का पूरा विकास नहीं हो सकता । अवगुणों के अवरोध से ही गुणों की शोभा बढ़ती है । अगर संसार केवल सुखमय ही होता और उसमें दुःख का नाम तक न होता, तो यह हरय भी आँखों को न रुचता ; क्योंकि मनुष्य का यह स्वभाव है कि एक-ही-एक स्थिति में पड़े-पड़े उसको जीवन मार-भरूप प्रतीत होने लगता है, और उसका जीने का मन्त्र चला जाता है । यह तो जीवन का चरित्र ही मूल जाता है । यही एक कि प्रकृति भी विभिन्नता का ही प्रथम पाठ पढ़ाती है ।

अतएव गुणों के उत्कर्ष के लिये अवगुणों का विरोध अत्या-
 वश्यक है । क्या आपको ज्ञात नहीं है कि काले के साथ सफेद
 रंग ज्यादा सफेद प्रतीत होता है । परंतु अगर वही सफेद रंग
 और किसी विरोधी रंग के साथ नहीं है, तो उस पर आँख भी
 नहीं जमती । नैयायिकों ने तो उच्छोडि के अनुमितिप्रत्य
 ज्ञान की प्राप्ति के लिये सपक्ष और विपक्ष का होना अत्या-
 वश्यक समझा है, अन्यथा उस ज्ञान को वे भगोत्पारुद्ध समझते
 हैं । अवगुणों की आग में होकर गुणरूपी रत्न और ज्योति
 समझने लगता है । हममें नई आभा आ जाती है । यही
 कारण है कि विषय-विकारों में आगूत रहकर बनेके धर्मों
 की मद्-मद्दर जो मनुष्य मन्मार्ग पर आगूत होता है, वही
 पूर्णरूप में संसार-यात्रा में मरुत्तना प्राप्त करता है । इसीलिए
 ही भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने मया अर्जुन को ज्ञानेता दित
 या हि संसार के विषयों में निररुद्ध, वहाँ में निराले हुए
 मन्त्र पर बलने को ही मया मोक्ष और ईश्वरविष का
 कहने हैं । इसी का नाम ही योग-योग है । उनका यह आशय
 इन श्लोकों में प्रकट होगा—

अनेन मुमुक्षुर्न वेत्ति नित्यं न मम ।

न च मे न च मे न च मे न च मे न च मे ।

न च मे न च मे न च मे न च मे न च मे ।

न च मे न च मे न च मे न च मे न च मे ।

अतः सिद्ध हुआ कि मान कोई बुरी बला नहीं है। यह न होता तो प्रेमियों को प्रेमलोला में मचा ही न आता और साहित्यज्ञों को प्रेम की विशेषताएँ ही न मालूम होतीं। मान-गर्विता नायिका के मान-खंडन के बाद मिलन से नायक को जो आनंद होता है, उस पर संसार का सब आनंद न्योद्धावर है।

हमारी नायिका मुग्धा हैं। उन्होंने बात-ही-बात में बिना सोचे-समझे नायकजी से मान ठान लिया है। अतः वे कोप-कर नायकजी से मिलना नहीं चाहती हैं। वे उनसे दूर-ही-दूर रहती हैं। परंतु क्या आप समझते हैं कि उनका यह कोप चिरस्थायी होगा? नहीं-नहीं, नायिका ने यों तो ऊपर से मान कर रक्खा है, परंतु हृदय में नायक के प्रति गाढ़ प्रेम है। एक बार मान कर लिया, तो उसे थोड़ी देर तो निश्चादकर नायकजी को यह ज्ञात करा देना चाहिए कि इस प्रकार की अनयन से उन्हीं को दुःख होगा। अतः वे फिर कभी ऐसा न करें, जिससे नायिका को मान की शरण लेनी पड़े। यह सब सोचकर नायिका हठ-पूर्वक मान को, जितना निभे, निभाता चाहती है। परंतु हृदय का आंतरिक प्रेम, थोड़ी देर की रूकावट में ही हृदय को लवालब भरकर, आँखों की ओर से निकला चाहता है। वह बहुत चाहती है कि मान रक्खूँ और प्रेम को प्रकट न होने दूँ, परंतु इतने पर भी प्रेम आँखों

में मलकता नजर आता है । जिस प्रकार प्रेमी दुर्ती को दुनियाँ एक दूसरी की चुगली करने में और गाँ राग पताने में प्रवीण होती हैं, उसी प्रकार इन आगियों ने दो दुनियों का कार्य किया । नायिका के हृदय पर प्रेमभाव के नायकजी से कह मुनाया । नायक रहस्य समझ गया। वे तो विरह-वेदना से इतने व्यथित हो चुके थे कि अपनी भू-स्वीकार कर नायिका से बचिबर जयदेव के रागों से—
 “भारगरलमण्डनं मम शिरसिमण्डनं, देहि पद्मज्जलमण्डनं”
 प्रार्थना कर हार मानने ही चाहे थे कि इसी समय उत्तरीय नायिका की नेत्ररूपी दुनियों ने रग ली । नायिका पूर्ण निज प्राण करने ही को थी कि उसकी विरवागधातिनी से के-अतिनिषी विरधी से जा निती । फिर तो जगत् हाथ की हुआ, जो व्यूषर के विषयियों से मिलने का नेत्रो-पर का पाटभुं के मैदान में हुआ था । नायकजी ने आँखों से हृदय को कहा कर लिया । अन्त में पलिताय वह हृदय कि नायिका को अपना मान होकर नायक के हाथों का मानवी पड़ी । दुर्ती में प्रेम-गति हुई । दरवाजे के का है नायिका को चुबन देना पड़ा । नायक की मूँ, बेसी । जगत् मान्य अच्छा था, जो इस प्रकार अनोखे-द्वय मन्त्रमग्न बना ही ।

अचानक आगमन

न्हान चली जब तौय, जानि नले पियहू तहां ।

प्रकट अचानक कीय, आस मूँदि लज्जा ढकी ।

चित्र स्वाभाविकता का नमूना है। ईश्वर ने प्रेमियों के आश्चर्य-जनक व्यापार बनाए हैं। जिसको सब संसार घुरा समझे, उसी कार्य में उनको अनोखा आनंद मिलता है। इनके तो रंग-ढंग ही निराते हैं। देखिए, इसी निरातेपन का नमूना उपरोक्त सौंठे में भी दरसाया गया है। यह स्पष्ट दिखाया गया है कि किस प्रकार प्रेमी अपनी प्रेमिका को लज्जित करने में ही आनंद पाते हैं। वे तो ऐसे शुभ अवसरों की खोज में लगे रहते हैं कि कहीं प्रियाजी को अरक्षित दशा में पा जायें, तो उनको लज्जित कर, उनकी उस समय की दशा से आनंदलाभ करें। अनोखा व्यापार है। क्या कहीं किसी के दुःख से भी सुख हो सकता है? परंतु पाठक, प्रेम-साम्राज्य में कोई बात अनोखी नहीं है। वहाँ तो ऐसे-ऐसे लाखों घृत देखने को मिलेंगे। वहाँ की तो माया ही और है। बेचा? संसारी जीव उसका रहस्य क्या समझें।

सुनिष्ट, प्रेम के ठेकेदार रसीले श्रीमुरलीधर भी बहुत दिन से बचकर ताक रहे थे कि राधिकाजी के साथ भी इसी प्रकार मन-

मानी करके उनको सज्जित करें। प्रयत्न किया हुआ नहीं जाता। आठार बहुत प्रतीक्षा के बाद वह समझ गया। राधाजी एक दिन चारों ओर वृक्षों से घिरे हुए मंदिर के एक मार्गतः गुरुसिख ध्यान में स्नान करने गईं। कृष्ण वहीं जा पहुँचे और कुल की छोट में खिस रहे। ठोकर देवने लगे। भोजी-भाती राधिकाजी बनुर-शिरोमणि पिता की यह आज्ञा थोड़े ही जानती थीं। सहज ही में, मन की आराधना न कर, बस चलाकर रहने लगीं। गुप्त महा पुत्र का घर निहसी और वस्त्रों के पास आई। इतर हस्तियों को अच्छा मोटा जानकर अपने आपकी जगा-कुत्र भी को से प्रकट दिया। राधिकाजी ने कहा चलाकर देखा, तो माथे नदर नदधान नदे है। जनते मुन पर मुद् मुनजन के मयच और चीनी से प्रेम का मय भाव है। राधाजी सदमगीं जी से यह आवा हि सप्रापण करो मय जाली। यदि कहें? आश्रित स्थितों के स्वामिनिद जगत की मय श्री। सप्रा के अन्तिमान चीनी हो ईव विवा। विष सादक इस चीनी के दिने मे जो अनन्तम मय मय है, जारा अन्त पर अनन्त प्रतिष्ठ। इतरा भी वर्णन रिता ही नद मय मय। इतरा भी मय मय मय मय। यथा मय अनन्त निव मय। वे अपने भाव का चन्दन चन्दन वदन को

और बार-बार मन में यही प्रेरणा करने लगे कि फिर ऐसा अवसर प्राप्त हो । यलिहारी है नाथ ! अच्छी चाल चली । पर पाठक, ध्यान रखिए, कहीं आप भी इसी चाल का अनुसरण न करने लग जाइए । अन्यथा बेचारो नायिकाओं का बुरा हाल होगा । यह तो उन रसिक-शिरोमणि को ही शोभा देता है ।

पुत्र-प्रेम

मुतमुख देखयो आदि निय, प्रकट सु आशय कीन्ह ;

कंत कयो रहु बावरी, औरे हित वय दान्ह ।

स्त्रियों का हृदय बड़ा कोमल, भोला-भाला और शुद्ध होता है। वह उस दर्पण के सदृश प्रतिबिम्बमाही होता है, जिसमें जो प्रतिमा उसके सामने आ जाती है, उसी का हूबहू वैसा-का-वैसा चित्र वहाँ खिंच जाता है। हमारी नायिका भी एक दिन पुत्रवती स्त्रियों के साथ बैठी-बैठी सोचने लगी—“मेरे भी पुत्र हो जाता, तो मैं भी इन बहनों की तरह सौभाग्यवती हो जाती।” सोचते-सोचते अपनी पुत्रहीनता के कारण वह अपने भाग्य को कोसने लगी। बाद में अपने हृदय की इस बात को नायकजी के सामने प्रकट की। नायकजी ने समझ लिया कि हो-न-हो इसकी यह आत्मग्लानि और स्त्रियों को पुत्रवती देख-कर पैदा हुई है। इसने तो बालहठ की तरह इस हठ को धार लिया है। अगर अपने सुख-दुःख, भले-बुरे का विचार करती, तो कदापि ऐसा हठ न ठानती। अभी तो इसकी अवस्था ही ऐसी है कि इस प्रकार की अभिलाषा करना, सब सुखों को लात मारना है। निदान इन्होंने उसे समझाने की ठानी, और ऊँचा-

नीचा लेकर कहा कि ए बावरी ! तूने बिना सोचे-समझे इस इच्छा को हृदय में स्थान दिया है। अगर चरा भी सोचतो, तो तुम्हें यह मालूम हो जाता कि यह नववय, पुत्रोत्पत्ति के लिये उपयुक्त समय नहीं है। यह तो सुख भोगने का सुअवसर है।

यह तो हुआ उनका उपदेश नायिका को। परंतु पाठक ! चरा सोविए, तो आपको मालूम होगा कि इस उपदेश में परोपकार की अपेक्षा स्वार्थसिद्धि का अंश ज्यादा है। क्योंकि ज्यों ही नायिका ने गर्भ धारण किया, त्यों ही बेचारे नायकजी को प्रिया-मिलन की सुख की घड़ी का कुछ समय के लिये अंत हुआ समझो। दूसरे, पुत्र के पैदा होने पर तो नायिका का जो प्रेम पहले केवल नायक पर ही रहता था, वह सब पुत्र की ओर बँट जायगा। यह तो नायकजी ही का काम। कि एक सप्तमद्वार परिणामदर्शी पुरुष की तरह—“एक य दो काज”वाली युक्ति सोच निकाली। उधर नायिका को चरा का समाधान किया, तो इधर स्वार्थसाधन में भी कुछ कमी रखी।

बेचारी ठहरीं शुद्ध और निष्कपट हृदय । उस चमकीले जाल को देख, उसकी छटा पर मुग्ध हो, उसकी भूलभुलैयाँ में घुस ही जाती हैं । फिर जो मक्खी की हालत होती है, और मक्खी को जो हर्ष होता है, उसका अनुमान आप ही कर लें ।

इन्हें इसी पाठ को नकल कर हमारे नायकजी ने भी अपनी कार्य-सिद्धि के लिये युक्ति निकाली । आप पलंग पर पड़े हैं, नींद नहीं आती । आँखों के सामने प्रिया के सुघर पूर्णोन्नत कुचयुगल चकर लगा रहे हैं । उनको देखने की प्रबल इच्छा है, परंतु अपना यह आशय प्रकट कैसे करें ? थोड़ी देर सोचने पर एक युक्ति सूझी । कपट-पूर्ण संसार में तो आप रहते ही थे । फिर युक्ति भी कपटमय होती, तो आश्चर्य ही क्या था । मस्तक-शूल का चहानाकर, पड़े-पड़े कराहने लगे । जाल ऐसा बिछाया कि नाग-पाश को भी मात कर गया । अगर और कोई बीमारी होता, तो लक्षणों से भी पहचानी जा सकती थी । परंतु यहाँ तो मस्तक-पीड़ा है । नायिका से अपने प्रिय की यह दशा देखी न गई और वह मट उनके पास आकर उनका मस्तक ध्वाने लगी । बेचारी भोली भाली इस छल को न जानकर कपट-जाल में फँस गई । भला यह क्या जानती कि यह तो नायकजी का कपट है, जिसकी ओट में वे अपना कुचदर्शन-रूप कार्य साधना चाहते हैं । उसके

तो हृदय में प्यारे की व्यथा देख-देखकर बेदना हो
 थी। परंतु जरा इन भोले बने हुए नायकजी की कार्यवाही
 तो देखिए। नायिका का अंचल तो उनके मुर पर पड़ा
 था। बस उसी की ओट से खूब मन भरकर उन कुप-
 पहाड़ों की निराली शोभा देखने लगे। अब क्या था। बेदना
 एकदम मिट गई। हृदय में शांति की ठंडी लहर उठ गई।
 शोभा को निरखते ही गए। आखिर नायिका ने ही अपने
 कार्य को यंद कर दिया।

प्रेमपगी प्यारी

जल भरि आवति नार, मारग में पीतम मिले ।

दीन्ह गगरिया डार, प्रेमपगी है डगमगी ।

लज्जा स्त्रियों में स्वाभाविक है । लज्जा स्त्रियों का आभूषण है । इसके बिना उनके और सब गुण धूल के समान हैं । इस दोहे में कवि ने प्रेम के साम्राज्य में, लज्जा का भावमय चित्र खींचा है । भाव यह है कि एक दिन नायिका सरोवर से जल भरकर घर की ओर लौट रही थी । रास्ते में सामने आते हुए आजकल की नई रोशनीवाले नायकजी, हाथ में छड़ी लिए, तिरछी टोपी धरे, रिस्टवाच धारण किए और आँख पर माइनस जीरों का परमा चढ़ाए, कैशनेबुल/बाबू साहब के वेश में मिले । नायिका ने इनको देख लिया और विचार करने लगी कि इनको न-जाने कैसा भूत सवार है कि जहाँ मैं जाऊँ, वहाँ आप भी आ हाथिर होते हैं । जहाँ-तहाँ मुझे लज्जित करते हैं । देखूँ ये और किसी रास्ते पड़ जाते हैं या नहीं । परंतु नायकजी ठहरे पूरे तालीमयाफ़ा । इनको और क्या चादिए था ? इसी मिलन के चंदेरय से तो ये बन-ठनकर घर से निकले ही थे । अतः छड़ी घुमाते-घुमाते वही ओर चल पड़े । जहाँ पर मिलाप हुआ, उस जगह का दरय तो

देखते ही बनता है। इधर तो वेशरमो का वाना पहने नायकजी आए; उधर लज्जा और स्त्रियोचित सकोच से कंपायमान गातवाली, सिर पर जल-पूर्ण गगरी रखे, नायिका भी आ पहुँची। पास आने पर दोनों की आँखें चार हुई। प्रेम ने दोनों के हृदयों को जकड़कर प्रेम-सूत्र में बाँध दिया। नायिका के शरीर में इस मिलन से पैदा हुई जो घकघकी-कँपकँपी शुरु हुई, तो उसी आवेश में मस्तक की गगरी हग-मगी और स्थानच्युत हो धरनी पर जा गिरी। बेचारे के वस्त्र सब भीग गए। भोग जाने के कारण भीने वस्त्र अंग से सर गए और उनके अदर से नायिका का सुवर्ण-वर्ण गाव अद्भुत आभा दिखाने लगा। अब सच्ची हालत मालूम हो गई। पहले अगर कोई नायक-नायिका के इस अभिनय को न भी देख पाता, तो अब तो अच्छा मौका मिल गया। नायिका शर्म के भार से इतना दब गई कि कुछ समय तक वहाँ से हिलना तब मुश्किल हो गया। नायकजी ठहरे वेशरमों के बादशाह। वे तो एक चतुर दर्शक की तरह इस दृश्य को देख-देखकर मग्न हो लगे। परंतु नायिका का हाजिब बुरा हुआ। जिस लज्जा के द्वारा उसने अपने आपको इस अवसर पर रति-रसना पाशा था, उसी ने प्रेम के बहकाने में आकर बली उसकी हँसी उड़ा दी। सब दे, घुरे वक्त में कोई किसी का साथ नहीं देता।

सरोज पर शशि

नीलाश्वर में राधिका, लई कृष्ण ने अंक ;

जमुना जल उत्पलदि धित, मनहु मयंक मशंक ।

राधा नीले रंग की सुंदर साड़ी पहने हुए है । सोलह शृंगार किए खड़ी है, मानो मोतियों की लड़ी है । बड़ी ही सुंदर दीख पड़ती है । इतने ही में ब्रजविहारी कृष्ण उधर आ निकले । राधा का मुख-मंडल मनमोहन को आते देख मधुर मुसकिराइट की आभा से आलोकित हो गया । दोनों ने एक दूसरे को प्रेम-पूर्ण दृष्टि से देखा । मुख की सीमा न रही । दोनों प्रेम के प्रवाह में बहने लगे । कृष्ण ने प्रेम से राधा को गोद में उठा लिया । कृष्ण की गोद में राधा इस प्रकार शोभा देती हैं, मानो कालिंदी में खिले हुए नीले कमल पर सशंक चंद्र बैठा है । कृष्ण तो कालिंदी हैं । राधा को नीलो साड़ी नीला सरोज है । उस साड़ी में से राधा का मुख ऐसे प्रतीत होता है, मानो सशंक चंद्र नीले कमल पर बैठा है । शशि सशंक इसलिये बैठा है कि वह जानता है, सरोज सरस्वती का आसन है । इसीलिये तो वे 'कमलासिनी' कहलाती हैं । अतः चंद्र को खयाल है कि कहीं सरस्वती देख लेंगे, तो नाराज हो जायेंगी । सो डरते-

हरते बैठा है । चघर स्त्रियोचित लज्जा के कारण कृष्ण की गोद में राधिकाजी सशंक प्रतीत होते हैं । अतः राधा के तत्कालीन लज्जा-पूर्ण मुख को सशंक शशि की उपमा सच-मुच बड़ी ही अनूठी है । कविजी, तो मालूम होता है, ऐसी-ऐसी प्रेम-पूर्ण अनूठी माँकियों के खूब दर्शन करते हैं ।

लजवन्ती लना

यमुना न्हाइ अवेत, भीगी पट पर आत हीं ।

हुवत ओंगुरी छलं, लजवन्ती तरु जिमि भई ।

सबरे का सुहावना समय है । शीतल सुगंधित पवन मंद-मंद अठलेलियाँ करता हुआ चल रहा है । हमारे अलबेला छैला भी वायु सेवनार्थ कालिंदी के फूल की ओर चल पड़े । वहाँ क्या देखते हैं कि स्वर्ण-लता-सी सुंदर अपनी प्रेयसी यमुना में स्नान कर रही है । उसके रूप-लावण्य को देखकर आप खुश हो गए और लगे धूर-धूरकर उसे देखने । भीगी हुई साड़ी में से उसके गात के करामात ने आप पर ऐसा आघात किया कि भ्रमण को मार लात, आप इस घात में लगे कि कोई बात करके गोरी के गात के हाथ लगाया जाय । आप इसी उधेड़-मुन में लगे हुए थे कि क्या देखते हैं कि नायिका स्नान करके भीगी हुई साड़ी ही में अपने घर की ओर चल पड़ी । आप भी उसके आगे-आगे चुपचाप चल पड़े, मानो आपको उससे कोई सरोकार नहीं है । जब तक मौका नहीं मिला, आप कुछ फासले से बिलकुल बेपरवाही से नायिका के आगे-आगे चलते रहे । हाँ, बीच-बीच में चतुर्धाँ से आप टेढ़ी नजर से इस बात को देखते जाते हैं कि

नायिका पीछे में आ रही है कि नहीं। चलते-चलते एक पना हुआ आ गया कि जहाँ पर और कोई नहीं दीख पड़ता था। तुरंत ही आने अपनी चाल धोमो कर ली, जिसमें नायिका वनको पहुँच सके। ज्यों ही नायिका पास से निकली, त्यों ही फौरन लपककर आने उनके अंग को डँगली से छू दिया। धूते के साथ ही नायिका लजबती-लता की तरह विलकुल अंदर की अंदर सिमट गई।

इस धूने में क्या आनंद है! इसको वे ही लोग जान सकते हैं, जिन्हें लजबती को धूने का कभी इतिहास पड़ चुका है। हमारे कई एक बक दृष्टिवाले रंगीन चरमा धारी साहित्यिक महापुरुषों ने महाकवि विद्यागोपाल को भी इन्हीं रँगोले नायक महोदय के रूप में देखकर उनका रँगोला स्वरूप विवर्णित किया है।

भीगी हुई साड़ी में से गोरे गात को देखकर किसकी तबड़ि नहीं गुदगुदाने लगती। इस गुदगुदारी के आनंद के लिये ही तो लोग विलायती बारीक बख्तों से अपनी स्त्रियों को सजाते हैं, जिससे उनको इन अबलाओं के अंग-प्रत्यंग के दर्शन होते रहें। बेचारे ऐसा करने को लाचार हैं, क्योंकि अबो सोत्र दृष्टि को तो आधुनिक शिक्षा को अर्पण कर चुके हैं। अतः 'शॉर्ट साइट्स' हो गए हैं। ऐनक धारण करके जैसे-जैसे

अपनी आँखों की लाज रखते हैं । अगर अपनी प्रिया को स्वदेशी खादी की साड़ी पहनायें, तो गोरे गात की करामात कैसे देखें । वे तो बारीक बखों में से भी उस गात की शोभा बड़ी मुश्किल से चरमे के सहारे से निरख पाते हैं ।

पीपल का पान

प्रेमदान मागत पिया, तिय नहि छाँद छुवाव ।

नव पीपल के पान ज्यों, घरघर कोमत मान ।

प्रेमोन्मत्त नायक नायिका से प्रेम-दान मागते हैं । नायिका ठहरी बिलकुल नबोदा । अतः स्वभावतः सकुचाती है । फिर भला इस प्रस्ताव को कैसे मानती । मानना तो दूर की बात है, वह इसको मुनकर ही दूर रहती है; छाँद तक नहीं छुवाती । छाँद भी कैसे छुवाती ? उसके मन में तो यह भय समा रहा है कि कहीं ये मेरी छाँद को ही न पकड़ लें । शायद वर—
“निय-धवि छाया भादिणी, गदे पीप ही जाय ।” बिहारी के दोहे का स्मरण कर-कर यह सोचती होगी कि जिस प्रकार छिन्ही-किन्ही जीवों में छाया द्वारा महण करने की शक्ति होती है, वही प्रकार वही शक्ति नायक में भी हो । इधर तो इस भय में व्याकुल लड़ी-झड़ी बचाव का बचाव सोच रही है ।
उधर जब तब मौला पाकर नायक के कान बनु की ओर आत धुगहर देख लेता है, तो मममन शरीर में एक अंतर्गिक विवर्तनी हो जाती है । उसे यह नहीं मान्य होता कि वह किसी केर में पड़ी है । परंतु कामदेव मौला देखकर जग पर जादू कर

देते हैं। भय एक ओर खींचता है, तो अलक्ष्य रीति से और ज्यादा प्रबलता के साथ प्रेम दूसरी ओर खींचता है। इस खींचातान में बेचारी नायिका की दशा अत्यंत शोचनीय हो रही है। प्रेम भय पर विजय पा रहा है और उसे अपनी ओर खींच रहा है। समय-समय पर इन प्रबल विपत्तियों के आक्रमण के घकों को खाकर वह काँप उठती है। इस कंप ही का कविजी ने घड़ी कुशलता के साथ कथन किया है। इस दशा में वह ऐसी काँपती है, मानो पीपलवृक्ष का नवपात धर-धर काँप रहा है। कैसी स्वाभाविक उक्ति है।

पाठक ! अगर आपने कभी पीपल-वृक्ष के नूतन पत्ते की दशा से काँपते देखा है, तो इस दृश्य का यथार्थ अनुभव कर आपकी आत्मा फड़क उठेगी। फिर सुकुमारता और स्निग्धता में भी यह पीपल का नवपात नायिका के यौवनोचित सौकुमार्य के समान ही होता है।



चारु चंद्रिका

सुमुखी संग मरुभूमि की, खिली चंद्रिका चारु ;

तबके की शीतल पवन, तिन्हें न अन्य विचार ।

मरुस्थल के निर्मल नभ की चारु चंद्रिका खिली हुई हो
संग में सुंदर नायिका हो और प्रातःकाल की शीतल पवन
चल रही हो, तो फिर किसको दूसरी बात का खयाल आ
संकता है ।

मरुस्थल को रातों वास्तव में बड़ी अच्छी होती है । स्वर्ग
कासा मुख प्रतीत होने लगता है । आकाश बिलकुल साफ होता
है । सृष्टि-रचना के पहले दिन जैसा वह दिखलाई दिया होगा,
वैसा ही नया ज्ञात होता है । नोलम के मरोखे में से पार
भाँकता रहता है । उसकी निर्मल चाँदनी ऐसी रोभा देती है
मानो किसी ने आकाश को चाँदी का मीना चौर आँदा दिया
हो । रेगिस्तान में रेत के कण बहुत जल्द ठंढे हो जाते हैं ।
शीतल पवन धीमी-धीमी अठगेलियाँ करता हुआ चलता रहता
है । उसके थपेड़े इतने अच्छे लगते हैं कि बिद्युता छोड़ने को
तयियन नहीं चाहती । पोकानेर की चाँदनी रातों का जो मग
हट चुके हैं, वे इसकी तारीफ करेंगे । इन गाज-मामानों का ही

मौजूद होना एक बड़ा भारी लुब्ध है। फिर चंद्रमुखा और साथ ही, तब तो कहना ही क्या है। बस, समझ लो कि सोने में सुर्गय हो गई। फिर अन्य विचार की दाल कैसे गल सकता है। बागई में बैकुंठ की बहार है।

भारी काम

घटक चौरनी चेत की, गरजन करत विहार ।

राधा रयामहि रयाम तहि, द्विषि न पवन पार ।

मधुमास को घटक चौरनी रात है । आकाशात्मी ने
और उम्वल जल में तारकाओं के साथ चंद्र को विहार करने
देखकर राधामाधव के मन में भी जल-क्रीड़ा करने की कामना
हुई जान पड़ती है । वे नीले और लाल कमलों से आच्छा-
दित सरोवर में जल-क्रीड़ा करने गए हैं ।

परंतु घटक ! यह कैसा रहस्य है ? वे तो एक दुगों को
सोच रहे हैं । नहीं-नहीं । सोचने-सोचने हीन तब हो गए हैं,
परंतु पता नहीं चलता । आप चार्द ओ इगहा कारण मयरे ।
हमारी समझ में तो यही आता है कि राधा तो कात हमलों
में और कृष्ण नीलोत्पलो में ऐसे मिल गए हैं कि एक दुगों को
दिगार्द मक नहीं देने । परंतु आशिर जाने कही ? कने-
कभी दूदने-दूदने कृष्ण लाल और राधा नीले हमलों में कने,
कन अवरय वन लग जाना । आप कहेंगे कि कृष्ण लाल वरने
का भीगे की माह माहूम होने में राधा राधा को न निकले
देने । परंतु वे तो राधा को देख संने ! वर ! आपने एत घ

विलकुल बेवश्रूक ही समझ लिया है क्या ? अनावेगन ! क्या वह इतना हो नहीं जानती कि रात्रि में कमलों पर भ्रमर नहीं होते । आर कहेंगे, यदि ऐसा ही है, तो दोनों प्रकट हो ही जायेंगे । परंतु प्रकट हो कैसे जायेंगे, जब राधाजी तो चंद्रगोति में मिल जाती हैं और घनरयाम सरोवर के रयाम और गहरे जल में ! केवल एक उपाय है, जिससे कृष्ण तो राधाजी को नहीं देख सकते, परंतु हाँ, अलवचा वे उनको देख सकती हैं । यदि सरोवर में ही मित्रता है, तो कृष्ण बोलें, क्योंकि राधिकाजी का कल-कंठ तो कोयल से मिलता है; और यदि बाहर मिलना है, तो राधाजी अपने नेत्रों को काम में लाएँ और जल से दूर कृष्ण को प्रत्यक्ष देखें । विरह-वेदना का निवारण करना मुश्किल है, तो बेचारे विहारी ही के लिये, क्योंकि राधाजी को अटारय करनेवाली ज्योत्स्ना तो, क्या जल और क्या स्थल, सर्वत्र व्याप्त है । कैसा अपूर्व एकीकरण है—

राम पै नंगे न जाना तुम शवेमदताक में ;

चौदनी छू जायगी मैला बदन हो जायगा ।

स्नेह-शंका-सम्मिलन

एक दिन पिय ने कही, करन केलि निररीन ।

मतमुख हो विहंगी प्रिया, नयनन में भय प्रीन ।

एक दिन रसिक नायक ने विपरीत रति करने की इच्छा नायिका से प्रकट की । नायिका सुनकर मुख मोपा करके मुसकिलाने लगी । उसके नेत्रों से भय और प्रीति दोनों प्रकट हो रहे थे ।

रति हो या और कुछ हो, विपरीत कार्य करने प्रागेष्ट प्राणी को भय प्रतीत होता है । मभव है, कथर गुरुजनों आदि का भय हो कि वे दण्ड न लें । इधर नायक के प्रति दार्ष्टिक प्रेम है, कथर रति में प्रीति होना स्वाभाविक है ही, तिस पर भी नायक कर बलाहर अपनी अभिज्ञान प्रकट करना । अतः नायिका ने नेत्रों में प्रीति भक्तकाकर इस बात का पता दिया कि वह तो पतिदेव को आज्ञा पात्रन करने को उद्यत है, किन्तु भय के कारण साधार है । मोपा मुख का है नायिका ने अज्ञा प्रकट की । इस प्रकार के प्रानय पर कथा का होना स्वाभाविक ही है । मुसकिलाने नायिका ने दण्ड दिया कि वह संनैता है, किन्तु अज्ञा के कारण निवरा है । अतः

दिल का आईना हैं। जो भाव दिल में होते हैं, उनका प्रतिबिम्ब
 आँखों में पड़ने लगता है। नायिका का लज्जा के कारण नत-
 मुख होना मय के रूप में और मुसकिराना प्रीति के रूप में
 आँखों में झलकने लगा।

कदंब-कुंज

केलि कामिनी कंत करि, सोइ कुंज के द्वार ;

मनहु आत्र एकत किए, रवि राशिही तई मार ।

सुगंधित और सुकामल लतिकाओं से आच्छादित सपन और ठंडा कदंब-कुंज किसके मन को मुग्ध नहीं करता । पर भी ऐसे कुंज व्रज में पाए जाते हैं; परंतु आनंदकंद भीष्म-चंद्र के जमाने में इन यमुना-नट के कुंजों की कुछ निगल ही छटा थी । इसका कारण गोपाल की मधुर मुरति का अमृतमय तानों की वर्षा ही प्रतीत होती है । इस अमृत-मिषर से निर्जीव पदार्थ भी उहड़ड़ा उठते थे ।

हमारे कवि एक ऐसे ही कुंज से विहार करने के बाद हमके द्वार पर खड़े हुए, कुंजविहारी और उनकी दिव्य-राधा का वर्णन कर रहे हैं । सघन कुंज नील गगन-भा जग पड़ता है । ज्योतिस्वरूप कृष्ण अपनी प्रभा के प्रभाव से प्रभाकर ही प्रतीत होते हैं । मुग्ध राधिकात्री की मृदु मुक्तामय मधुर मूर्ति, अपना भीटा प्रचार फैलाती हुई वरुण की मायूम होती है । वरुण दिनों में कोरारा करने और बरसों को बीमार में जगत् में प्रलय मचाने के परधान क्यों बर-

देव, सूर्य को उनकी प्रिया इंदुमती के साथ मिलाने में, सफल हुए हैं। धन्य कामदेव, तुमने कभी न मिलने की धारा रक्तनेवाले प्रेमियों को भी मिला दिखाया !

शिथिल सरोजिनी

घनी केलि करि बाल निय, पिय बिहुरत हमि सोहि ;

शिथिल कमलिनी होइ निशि, अलमानी भिमि होहि ।

प्रेममिलन और रत्यंत सा क्या ही विनोदपूर्ण वर्णन है। नायिका सुग्धा है। अतः संसोच ही सा अंश उसके स्वभाव में ज्यादा है। उसको रति-केलि की अत्यंत इच्छा तो है, परंतु संकोच-धरा नायकजी के समक्ष प्रकट नहीं कहती। रात्रि में दंपती का समागम हुआ। नायिका तो चाहती ही थी, उसको तो यह इच्छा पहले ही से थी। जब बड़ी इच्छा बिना किसी प्रार्थना के पूर्ण होने को आई, तो वह मारे हर्ष के फूली न समाई, और उसी दमग में केलि भी घनी की। जब विशुद्धि का समय आया, तब का वर्णन कविजी किस चातुर्य से करते हैं। उस समय ऐसा प्रतीत होता था, मानो सारे दिन अपने प्रियतम प्रभाकर से प्रेम-केलि कर पद्मिनी उनसे विशुद्धि कर अब रात्रि में शिथिल पड़ी है।

यह तो स्वभाव-सिद्ध ही है कि जब किसी की इच्छा बिना विशेष प्रयास किए ही पूरी हो जाती है तब इच्छापूर्ति के परिणाम उसे यह आनंद मिलता है

जिसमें मग्न होने पर किसी चीज की चिंता, चेतनता और कार्य करने की इच्छा नहीं रहती। उसमें विचित्र प्रकार की शिथिलता आ जाती है, और उस समय का उसका आलस्य भी आनंददायी होता है। यही हाल नायिका का था। जिस प्रकार प्रियतम पतंग के साथ मिलन-रूपी अभिलाषा-पूर्ति के बाद कमलिनी शिथिल हो गई, उसी प्रकार वह भी अपना अभिमत पूरा कर शिथिलता, आलस्य और निश्चेतनता से शोभा देने लगी। घन्य हैं वे सुदरियाँ, जिनको इस शिथिलता का अनुभव होता है। यह तो उन्हीं के भाग्य में लिखा है, जो प्रेम का रहस्य समझ चुकी हों। एक कवि तो इसी शिथिलता पर लड़ू हो जाते हैं और चकर खाते-खाते ही बोल चढ़ते हैं “.....सुरत मृदितादि बाल ललना; तनिम्ना रोमन्ते” इत्यादि।

घन्य है प्रेम ! शिथिलता जैसे आलस्योत्पादक अवगुण को भी गुणों का सरताज बनाना तुम्हारा ही कार्य है।

नेह में नीति

विरह विधा लाखे व्याधित है, विछुरत तिय दुख पाय ;

का कह अलि ! कहि फेरि मुख, निरखन कंतहि जाय ।

बिछुड़ने के पहले नायक और नायिका का मिलन हो रहा है। नायिका की सखियाँ किसी एकांत स्थान में बैठी हैं। प्रेम-मिलन जब हो चुका और बिछुड़ने का समय आया, तो नायिका के हृदय को अत्यंत दुःख हुआ। वही नायिका, जो थोड़े समय पहले अपने प्रिय से मिलकर सब दुःख भूल गई थी, अब बिछुड़ने समय भविष्य की विरह-व्यथा का स्मरण कर, उस भयावने दृश्य को आँखों आगे रखकर विदारित-हृदय हो रही है। उसकी दशा बड़ी ही शोचनीय है।

एक खयाल होता है कि अगर प्रभु विरह न बनाते, तो उनका क्या चिगाड़ता ? क्या उनको प्रेमियों के इस दुःख में इतना मजा मिलता है, जो उनको इतना असह्य कष्ट देते हैं ? विरह-वेदना की तीव्र ज्वाला तो पूर्व के सब सुखों को जलाकर भस्मसाव कर देती है। इसी से तो किसी सतप्त-हृदय कवि ने कहा है—“गुराई गर न होती तो मुहज्जत चोख अच्छी थी।” परंतु क्या हो, नायिका को किसी आवश्यक कार्यवशा अपने मैके को जाना है।

इधर प्रेम उसके जाने में बाधा डालता है, तो उधर लज्जा उसको सौचती है। निदान वह जाने को तैयार होती है—दो-चार कदम चलती है, परंतु अब तो प्रिय-मुख देखे बिना एक पल भी उसका जीना कठिन-सा जान पड़ता है। उधर स्त्रियोचित लज्जा भी उसको अपने आपको सँभालने की प्रेरणा करती है। वह अपनी इस हालत को सखियों से छिपाना चाहती है। परंतु दर्शन की अभिलाषा भी तो नहीं रोकी जा सकती। अतः नायिका एक तरकीब सोच निकालती है। एकआध कदम चलकर वह पीछे मुख करके 'का कह सखि', 'क्या कहती हो सखी ?'—यह बात सखियों के बिना कोई प्रश्न पूछे ही उनसे पूछती है, और इसी व्याज से वह अपने प्रिय का दर्शन भी कर लेती है।

रुहिए कैसी चाल चली—'आम-के-आम और गुठली के भी दाम।' उधर प्रिय-दर्शनरूप मुख्य ध्येय भी सिद्ध हो जाता है, और इधर लज्जा भी रह जाती है। और सखियाँ भी यह जान-कर खुश होती हैं कि पति-प्रेम में संलग्न होने पर भी वह उनकी स्मृति को दिल से नहीं भुलाती। अच्छी नीति है।

प्रेम की प्रयत्नता

धिरि आए धनरयाम घर, नहि आए धनरयाम ;

आज दिवस ठंडो तक, मो कई लागत पाम ।

वर्षा-काल है । आकारा मेघाच्छन्न है । इसी समय निर-
वेदना से व्यथित धृपमानुजा अपने प्रियतम की बाट जोहती
हुई बैठी हैं । धनघोर घटा को धिर आया देख, मन में रिक्त-
मिलन की इच्छा चटक रूप धारण कर लेती है । वे सोचती हैं
कि ये रयामधन तो आकारारूपी नायिका से मिलने के लिये
चले आए, परंतु मेरे हृदयरत्न भीमजबिहारी अभी तक नहीं
पधारे । क्या कारण है ? इन कारे कजरारे पयोधरों तक ने
आज अपने प्रेम का पूरा परिचय दिया है कि आकार-त्रैलोक्य
शून्य-हृदया नायिका के पाम चले आए हैं । तब क्या मेरे हाथ
में ही प्रेम का लवजोरा नहीं है, जो धनरयाम इस अपमान का
नहीं आए ? मैं तो अपने प्रेम पर गर्व रखती थी, और निरप-
माननी थी कि कृष्ण इससे बरा में हैं । मेरा तो यह खयाल भी
था कि जब चारूंगी तब इससे हाग बनचो बुला सहेगी । वरु
आज मेरा यह गर्व लख हो गया । आज मान्य हो गया कि
कृष्ण को बरा करने की मेरे प्रेम में नायक नहीं है । यही तो

भला आज बादलों और आकाश-जैसी निर्जीव जोड़ी का मिलाप हो जाता, और मैं यों ही कृपा प्रतीक्षा करती रहती ।

इसी प्रकार की उधेड़-धुन में राधिकाजी पड़ी हैं । वे धार-चार, रह-रहकर अपने भाग्य को कोसती हैं, धिक्कारती हैं । अपने आपको बुरा भला कहती हैं, और कृष्ण को छली जानकर उनके कण्ठ पर रोष प्रकट करती हैं । समय बहुत ठंडा है । वर्षा की बौझार से शीतल हुई समीर शरीर को स्पर्श कर सीत्कार पैदा करती है । परंतु क्या हो ? यह सब साज राधाजी पर विरुद्ध बिकार पैदा करते हैं । उनको यह समय प्रीष्म-कालीन मध्याह्नवत् गर्म मालूम होता है । शीतल समीर के झकोरे लू का काम करते हैं । रह-रहकर, अपनी वर्तमान दशा का स्मरण कर उनके दिल में प्रिय-मिलनोत्सुकताजन्य हूक चूठती है, और नैराश्यद्योतक निरवास मुख से निकलती है । अब तो एक प्रचंड तूफान शुरू हो जाता है, जिसके वेग में वे विचाररूपी संसार के इस ओर से उस ओर तक उड़ती रहती हैं । वर्षा तो उनको ऐसी लगती है, मानो आकाश से आग की चिनगारियाँ धरस रही हैं । ठीक है, भर्तृहरिजी ने कहा है—“अवस्था वस्तूनि प्रथयति संकोचयति च” सब कार्य अवस्था के अधीन हैं ।

कोयल की कूक

कुर्जान में डूँ जात हौं, दीनद कोइलिया कूक ;

प्रिया जान को ध्यान करि, उठो हिये में दूक ।

नायिका को थोड़े ही दिन परचान् अपने नैहर जाना है । यह बात नायकजी को विदित है । वे जब-तब इसका स्मरण कर बड़ा दुःख पाते हैं । इसी सोच में उनका प्रतिदिन वर्ष के समान गुजरता है । ये बहुत चाहते हैं कि वह दिन कभी न आए, परंतु प्रकृति किसका अनुरासन मानती है । दूर रहने के बजाय वह दिन बहुत नजदीक आता जाता है । जब-जब वे प्रिया के भावी विरह का दुःखमयचित्र अपने हृत्पट पर उतार लेते हैं, तब-तब उसको देख-देखकर उन पर वस्रपात-सा हो जाता है । पर करें क्या ? आखिर वह दिन क़रीब आ ही जाता है ।

प्रिया-विरह से संतप्त-हृदय नायक किसी प्रकार अपनी भावी विरह-व्यथा को शांत करने के विचार से वषट्क-विशर्गों को निकलते हैं । उनका खयाल है कि शायद ऐसा करने से उनके हृदय को थोड़ी शांति मिलेगी । परंतु क्या आपको यह माशूम नहीं है कि माग्यहोन मनुष्य जहाँ अपना भला सोचकर जावे

हैं, वहाँ भी दुर्देव उनका पीछा करता है। भर्तृहरि महायज्ञ की कड़ी हुई खल्वाट की कथा का स्मरण होगा, जो सूर्यातप से वन-मस्तक हो, ताल-वृक्ष के तले तनिक विश्राम लेने के लिये ठहरा था, और उसी समय उसके कच्ची हाँड़ी से मस्तक पर तालफल गिरा था, जिससे बेचारा भग्न-सिर हो मृत्यु को प्राप्त हुआ था। तब भला दुर्देव-पीड़ित नायकजी का कहाँ पिंड छूटता ? आखिर हुआ वही, जो होना था। बैरिन कोयल ने देवदूत बन तमाम कार्य किया। कोयल की कूक सुन कोकिल-स्वरा अपनी प्रियतमा का स्मरण कर, जो दिल में हूक छठी, तो हृदय मारे व्यथा के टूक-टूक होने लगा। फिर तो उसी विरह-वेदना की याद में व्यस्त हो मूक की तरह इधर-उधर घूमने लगे। भूख-प्यास सब भूल गई। जिधर देखा, उधर ही मिया की मधुर मूर्ति आँखों के आगे चकर लगाने लगी। रुख-रुख पर उसी कोकिल की कूक सुनने की उत्कट अभिलाषा से नखरें फेंकते, पर फिर नैराश्य आ घेरता। इसी प्रकार भटकते-भटकते सब उपवन छान डाला, परंतु चित्त को विलकुल शांति न मिली। उलटे व्यथा और बढ़ गई। आप किसी ओर ही मतलब से थे, पर हुआ कुछ और ही। निदान पर लौटे।

पाठक ! अब आगे के भयंकर दृश्य का आप स्वयं अनु-

मान कर लीजिए । नायिका आज ही जानेवाली है । उसके जाने पर बेचारे नायकजी का क्या हाल होगा, वह आप अनुमान की दृष्टि से देखिए । हमारी लेखनी तो इसको सिलवें काँपती है । भला कोयल की कूक को सुनकर, प्रिया का ध्यान कर जिनका यह हाल हुआ, तो फिर प्रिया के चले जाने पर क्या होगा, सो तो ईश्वर ही जाने । सब है, देव-निहत पुरुषों का कष्ट मेटना विधि के भी हाथ नहीं है ।

विरही विधु

यामिनि भामिनि संग रमत, दीन्ह विरहिनी साथ ;

आते शशि कलुषित भयो, विरही है के आप ।

पूर्णमा का प्रताप चारों ओर छाया हुआ है । पूर्णेंद्र अपनी पूर्ण-कला का प्रकाश फैला रहा है । एक विशाल भट्ठालिका के उज्ज्वल चौकी पर चारु चंद्रिका की चमक निराली ही मालूम होती है । इसी भवन की एक ऊँची छटारी पर एक नवेली नारी चूने से पुते हुए चमकीले चौक पर, बिना किसी पलंग या पट के, नीचे ही विरह की पीड़ा से पीड़ित होकर पड़ी है । सुधांशु का शीतल रश्मि-बारा उसके धेरा-बारा को छूकर गर्म हो उठता है । उसके रोम-रोम से जलती हुई विरह की ज्वाला निकल रही है । शरद-शत्रु में भी उसकी गर्म आँखों की लपेटों का स्मरण कराती हैं । परन्तु शत्रु को इसकी कुछ परवाह नहीं । ये बेचारी विरहिनी को इस विकट वेदना को देखकर भी उसका कुछ उपाय या उपचार नहीं करते, किंतु निःशंक होकर अपनी प्रिय भामिनी यामिनी के साथ रमत कर रहे हैं । उनका यह निर्दोष-पूर्ण कठोर व्यवहार भला वह विरहिनी कैसे सहन

विष्णु-विहीन पादस

मिथ करहुँ आए मही, गावन भादों मेन ।

मर लाग्य दिन बीजुही, बरगन है दिन रैन ।

विहीनी नायिका के दोनों नैन गावन-भादों की समता करने हैं। जैसे गावन-भादों में मही लग जाने के परवान बिजली की चमक नहीं रहती और पानी मरना हो रहता है, वैसे ही नायिका के मुख-रूपी मेघ पर बिजलीरूपी हँसी का नाम लड़ नहीं है। वह दिन-रात आँसु बढ़ाती है। गावन-भादों की-सी यह लग गई है। बेचारी गुरुभार नायिका का चोमल हृदय विरह के तान में दिपल गया है, और नेत्रों के द्वार से बार-बार की ओर बढ़ जाता है।

इस हृदय की हल बढ़ा बढ़ें। इस पर हमें बड़ी रस कांती है—इसको पड़ी-भर भी रैन नहीं है। बड़ी विरह-वेदना में दिपल कर रहने लगता है; बड़ी घेस-पड़ता की कलर बिजली के चमक में दिपलकर प्रेमाकृत्य से कहर होता है, बड़ी रस, बरला आदि अमृतान्न भावों में काई होने का भी दिपल रहता है। पल नहीं, पर हृदय दिपल रहा है कि पल का भी लड़ कर ही नहीं जाता। कदमों में अनेक गुन

गए, बहुत-सी नदियों तक का नाम न रहा; परंतु इस मरने में तो पति-प्रेम का प्रवाद अभी उमड़ ही रहा है। यह मरना तो मरने पर ही मरना बंद करेगा, वरना यों ही करता रहेगा।

धिरह-वेदना

मिलन होइ है स्वप्न में, विधुरत निकसे बेंन ।

ये दुस्खियाँ छँसिबो कहहुँ, वा बिन पलहुँ लगे न ।

नायक विदेश को जा रहा है । विधुइते हुए बड़ा दुरी हो रहा है । इस प्रकार उसको दयनीय दशा को देखकर नायिका यह कहकर उसे धैर्य दिलाती है कि प्याराने को कोई बाध नहीं है, क्योंकि स्वप्न में अवश्य मिलन होगा । नायक उस समय तो यह सुनकर किसी प्रकार अपने मन को समझाकर रस लेता है ।

छिनु पाठको ! जरा कलेजा धामकर सुनिएगा । बाद में बेचारे नायक की अवस्था बड़ी रोचनीय हो गई है । मिलना तो दर किनार रहा, पारीय को नींद तक नहीं आ रही है । प्यारी का मुसफंद देते बिना छँसियाँ पढ़ते ही बकौर को लार झकुल रही थी, जिस पर नींद का न आना और नई दुनोवन है । दुस्खियाँ छँसियाँ पल-भर के त्रिये भी नहीं लगती हैं । संभव है कि किसी शुभ मूर्त में पल-भर के त्रिये भी लग जायें, तो प्रिया के दरान हो जायें । प्यारी के बिना नींद लगन हो रही है । नींद आवे अब न स्वप्न आवे; वहाँ

तो प्यारी के साथ-साथ बेचारे को नींद के साथ भी विशेष हो गया है । न प्यारी मिले, न नींद आवे और न स्वप्न जागे की आशा की जाय । सच बात है, मुसीबत में कौन अपना साथ देता है—

कोन होता है घुरे बहू की हालत का शरीक ।

मरते दम देता है कि आशा भी फिर अती है ।

बेचारे ने स्वप्न के गिरान पर भी संतोष कर लिया । पर उसके भाग्य में तो यह भी नहीं लिखा है । रिक्त के आरंभ में दर्शन करता, किंतु वह नायिका के पास रह गया । रातों रात दिन यिस्तरे पर पड़ा करवटें बदला करता है । बड़ी मुसीबत में है । सच तो यह है कि—

सुरा दिगी मे दिगी का कमी! इबीब न हो ।

यह बर्द बढ़ दे कि पुरमन हो भी नयाब न हो ।

राज्य का गुप्तचर

गुप्तचरी है करत शशि, पा अनंग निर्देश ;

प्यारी को पहरो सदा, देत बदल के भेस ।

चाँद कभी छोटा दिखलाई देता है, और कभी बड़ा, सो कोई यह न समझे कि यह घटता-बढ़ता है । किस्सा यह है कि नायिका परविशेषकर कामदेवजी महाराज आसक्त हैं । जैसा कि सपनियों का स्वभाव होता है, आपको सदा इस बात का संदेह रहता है कि प्रेमिका गुप्तरूप से कहीं किसी दूसरे यार से न मिल ले । अतः आपने चंद्रमा के नाम हुक्म निकाल दिया है कि यह चिला नारा हर रोज भेष बदलकर उनकी माशूका सादवा की निगरानी रखे कि यह किसी और यार से घातचीत न करे । कामदेव के जासूसों ने तो जर्मन-जासूसों को भी मात कर दिया । यह तो हमें मालूम था कि चंद्र कामदेव के मददगारों में से है । मगर यह तो हमें अब मालूम हुआ कि चंद्र कामदेव को सुकिया पुलिस में मुलाखिम है, और जासूसी किया करता है । ऐसा बात होना है कि कामदेव की माशूका खूबसूरती में उनकी खी रति से भी बड़ी-बड़ी है । तभी न यहाँ तक नौबत पहुँची है कि चंद्र-ऐसों को जासूसी के लिये तैनात किया गया है ।

सुर-सरिता

पीन सीता ठंडी चले, बरसे नैननि नीर ।

खलखलाय कुच गिरि गिरे, गिरे खंच भू धर ।

वर्षाश्रु का पूरा-पूरा सामान जुटा है । शिरद के बारजों ने नायिका के धैर्यरूपी आकाश को आच्छादित कर लिया है । नायिका ठंडे निःश्वास भर रही है । बड़ी मानों पुरवारी वर्ष के ठंडे मौके हैं । यह सो गूमलाधार वर्षा होने लगी, रिमरिम-रिमरिम बूंद पड़ने लगी, मरमर आँसुओं को मड़ो लग गई । यह पानी की पनी ओर तेज चौधार प्राणियों को गुप्त न देकर, चट्टा चट्टे दुःख ही देने लगी । छलछल करती हुई प्रज्वल कुम्हणों वर्षनों पर पड़ने लगी । फिर गोर-रूनी भूमि पर गिरकर समुद्र को ओर प्रवाहित होने लगी । गाय ही बगवे खंच में धैर्य में धुल गया और हूटकर पूर्वी पर आया । जैसे वहाइ पर गिरकर पानी आने साथ पत्थर इन्तों को हल्लाकर बहा ले जाता है, वैसे ही अद्भुत नायिका के हृदय पर गिरकर बड़ी सो हमारे धैर्य को बहा ले चली । वहा इन्तों में जमे होने हैं, परंतु बसहा धैर्य में जाने में ही इन्तों हुआ था, फिर हमारे आँसुओं के प्रथम प्रवाह के रूप

बहते क्या देर थी। यह नदी स्त्री के शरीररूपी भूमि को उपजाऊ बनाकर उसका हास करने लगी।

हम नायिका की इस अश्रुधारा को सुरसरि की उपमा दे सकते हैं; क्योंकि यह भी गंगा की तरह त्रिपथगा है। विरह-रूपी भगीरथ के तप के प्रभाव से, नैनरूपी विष्णु के चरणों को छोड़कर, कुचरूपी शिवजी के मस्तक पर गिरकर, अंक-रूपी पहाड़ पर गिरी, और वहाँ से भूमि पर पतित होकर सागर की ओर प्रवाहित होने लगी। सच है—“विवेकभ्रष्टानां तु भवति विनिपातो शतमुखः।”

बहुरूपिया विधु

बहुरूपियो बनत है, घटत-बढ़त नहि चंद ।

देख वियोगिनि कहै दुखी, देत रहत आनंद ।

लोगों का यह खयाल कि चंद्र घटता-बढ़ता है, बिलकुल गलत है। वास्तव में बात यह है कि चंद्र परोपकार-धरा वियोगि-नियों के दुःख से दुःखित होकर उनका मनोविनोद करने के लिये बहुरूपिया बनता है। बहुत मुमकिन है कि यही बात हो, क्योंकि चंद्र के परोपकारी जीव होने में तो कोई शक नहीं है। पार्श्वी यतें हमको इसी की यदौलत नसीब होती हैं। अब वियोगि-नियों के भाग्य सुल गए समझ लो। चंद्र-सा निष्काम सेवक भला इनको मिल गया, अब क्या चाहिए। इसके नित नए-नए रूप देखें और आनंद से रहें।

भगर एक बड़ा जुहम हो गया। बेघारे बहुरूपियों की रोटी थिन गई। उनको चाहिए कि अब कोई और पेसा अलि-यार करें। भला जब चंद्र-से बतुर जन इस काम को करने लागे, तो अब अन्य लोग इस कार्य को मुकामजे में सफलता-पूर्वक कर सकेंगे, यह आशा कैसे की जाय।

पंच पनीसः

[illegible]

१४ को० पुनः चतुर्थः, वि० १९ अक्षरः ।

[illegible]

दिन-रिक्त तारह की दिन से गुजरती है हमारे :

है वस्त्र से भी उदास मया हाथर में ।

मन में जैसा ही नहीं था। अंत में वही 'दाई अक्षर प्रेम के' लिख दिए जो पति-प्रेम की प्रेरणा से उसके मुस्तिष्क के अग्र भाग में थे। 'प्रिये' लिखकर सोचने लगी कि पत्र में क्या लिखूँ। सोचते-सोचते मानसिक चक्र के आगे प्रियतम की हृदय तस्वीर, हाव-भाव, कटाक्ष, प्रेम-मुसकान और पाठचीठ करते हुए रूप में खिच जाती है। नायिका 'विश्रान्तिारम्भ' की तरह निरबल हो, इस छवि को निरखने लगती है और नायक के रूप में अपने रूप का प्रतिबिम्ब देखकर आप ही अपनी छवि पर विमुग्ध हो जाती है। यही कारण है कि सात्विक-भाव-विध्रम वशा स्त्रीलिंग में 'प्रिये' संबोधन करती है। इस धुन में लगी हुई पति, की सुधि में लीन समझो देख, सबको यही खयाल होता है कि वह दीवानो हो गई है। शास्त्र में उनको इस दशा में और पागलपन में कोई विशेष अंतर नहीं है। आत्मविस्मृति में लीन नायिका पत्र को समेटकर, बड़ी छुरी के साथ नायक के पास भिजवा देती है। उसको यह सूझता ही नहीं कि उसकी पत्नी कोरी है। वह तो राखी हो रही है कि मैं छूष अच्छे भाव भरकर पत्रो लिखी है।

परंतु पाठक, क्या सचमुच उसने कोरी पाठी दी है? नहीं-नहीं, हमारा तो खयाल है कि आज तक शापद हो किमी

और ने ऐसी भावपूर्ण पत्ती लिखी हो । हमें तो यह भी निश्चय है कि जितना भाव 'प्रिये' शब्द में भरा था, उसको दरसाने— नहीं-नहीं, उसका आभास तक दिलाने—में चुनी हुई बड़े-बड़े प्रेम-प्रवीण पंडितों की पूरी बेंच तक कामयाब नहीं होगी । प्रत्युत 'प्रिये' शब्द के आगे उनकी सारमयी भावपूर्ण पत्ती पानी भरा करेगी ।

मार की मार

कुम्भर के यदि धनुष-मार, भीरु त्रिदि पर तन ;

छातु मार मार्य गये, तब मर गुन कन ।

अन्यान्य शत्रुओं में तो रतिनाथ को बड़ी सुरिच्छ से करो
धनुष-शर बनाने की सामग्री मिलनी होगी, परंतु शत्रुओं
वसंत उनके लिये अनेकानेक सुंदर सुगंधित सुगन्धों
का उपहार लाने हैं। इसीलिये वे अपने अंतरंग मित्र
हैं। केवल कोमल कुसुमों की कृतार ही न लाकर वे अपने
साथ नव पल्लव, नव मंजरी, निर्मल नोर, नीले, लाल और
धवल कमल, नव कौमुदी, नए पक्षी, नए मदमाते भ्रमर,
नवजीवन और नवानंद के नवरत्न भी लाते हैं। इस मधु-
मास में मदमस्त, मैनमदीप अपने माननीय मित्र की
मदद से मधुपों की प्रत्यंचा, मालती इत्यादि मीठी मदकवाले
पुष्पा की कमान, मधुमकरंदमय मुदित मंजरी के बाण
लेकर मन में मुदित होकर मधुयामिनी में मरण
विरहिनियों तथा मानिनी, मध्या, सुगंधारूपी मृगियों
मारने के लिये तान-तानकर बाणों की मृदु मार मारता
महादेवजी की मेहरबानी से आपको और भी मद मि

है। अवनु होने के कारण आप किसी के दृष्टिगोचर तक नहीं होते, परंतु धनुष-बाण पहले से कहीं ज्यादा अच्छा पकड़ सकते हैं। बेचारे बेसमझ मृगों को अपने साज व सामान की शान दिखाकर मोहित कर लेते हैं; परंतु वे मृग मार की मार से अपने प्राणों को न छोड़कर मान, लज्जा और कुल कान ही को छोड़ देते हैं।

देखो, एक चीख न छोड़ने के कारण तीन-तीन चीखें छोड़नी पड़ती हैं। बड़ा आश्चर्यजनक व्यवहार है। शिकारी के शरीर तक नहीं, धनुष और बाण भी कोमल कुसुमों के हैं, प्रत्यंचा बनाई है, चंचल चंचरीकों को चुनकर और शिकार के प्राण छूटने के बजाय मान, गुन और कान ही छूटते हैं।

भार्तंड का मोह

सजनी को रवि ने कभू, देखा वसनविहीन ;

याही ते है तपत नित, अधिक-अधिक मतिहीन ।

कहते हैं कि किसी समय पर सूर्य ने नायिका-विशेष को नग्न देख लिया । उसके सौंदर्य को देखकर आप उस पर क्रोध हो गए, और लगे पागल बनकर अधिक-अधिक तपने कि कहीं गर्मी के कारण नायिका अपने वस्त्र फिर उतार दे, तो शरीर को उसके नग्न गात की झलक देखने को एक बार फिर मिल जाय । यह नायिका तो मालूम होती है सुंदरता की साक्षात् प्रतिमा है, अन्यथा सूरज, जिसकी नजर के सामने सैकड़ों गुल रहते हैं, उसे देखकर ऐसा कभी नहीं खौफा जाता ।

सौंदर्य में भी एक अजीब शक्ति है । इसे देखने को किसी मन नहीं ललचाता । सूर्य के सदृश उस आत्माएँ भी इसके फेर में पड़कर अपने कर्तव्य से ध्युत होने लगती हैं । सूर्य यह नहीं समझते कि इस अधिक तपने से उन्हें प्यारी के गात-दर्शन तो संभव है कि हो जायेंगे, किंतु अधिक गर्मी के कारण औरों को व्यर्थ कितना कष्ट उठाना पड़ेगा । मगर इसकी कौन परवा करता है ? सूरज अपना दिल खो चुके । वे

तो बेचारे दीन, मतिहीन हो गए। समझ ही होती तो बेचारे ऐसा काम ही क्यों करते। कित्त अब तो नायिका के हाथ लज्जा है। स्त्रियों के स्वभाव में हठ बहुत होता है। कहीं वह झुककर बैठ गई कि पाहे प्राण निकल जायें, किंतु बख तो हर्गिज न बतारूंगी, तो समझ लो प्रलयकाल आ उपस्थित हुआ। क्योंकि सूरज देव भला किससे कम हैं। वे अधिक-अधिक तपते ही चले जायेंगे। परमात्मा सूरज और नायिका में से किसी एक को सुमति दे।

पाठक ! आप समझें कि ये सूरजजी महाराज नायिका का गाव ही देखने को इतना उत्सुक क्यों हैं। नायिका का मुख देखकर ही वे संतुष्ट क्यों नहीं हो जाते। वास्तव में बात यह है कि नायिका का मुख तो उन्हें चंद्रमा के सदृश दीग्य पड़ता है। अतः वे पहचान नहीं पाते हैं। जब नायिका को दिसतुल नमन देखते हैं, तब पहचानते हैं कि यह वही नायिका है।

श्यामिनी-श्रमण

यः सौ श्यामिनी श्रमण, श्रमण केन्द्र पुष्पः ।

श्रमण श्रमण श्रमिनी, मुने जा बी कर ।

श्यामिनी का यह अत्यन्त रोचक दृश्य दर्शनीय है।
आकाश घनघोर पटाघोर में फिर हुआ है। रह-रहकर घन
विपुल बादलों में इन प्रकार घमक जाते हैं, मानो कोई पक्ष
पुष्पों अपने प्रेमी का मन सुभाने के लिये पल-पल में प्रकट
होकर फिर जाते हैं। अपने आभयदान में पों को रसपूर्ण देव
आभित प्रेमी और मयूर पुष्प-पुष्पकर अभ्यर्चना कर रहे
हैं। इसी सुगन्धायी समय में सपन कुंज के एकान्त स्थान में
एक श्याम के वृक्ष के नीचे राधा-भायव मुरली लिए मूल रहे
हैं। पाठक, यह कौन पाषाण-हृदय है, जो मधुर मुरलीधारी
श्यामविहारी की राधा के साथ इस मूल की माँकी के दर्शन
कर प्रेमरसाट्ट नदी हो जायगा ? क्या राधाकृष्ण के इस समय
के आनन्द का आप अनुमान भी लगा सकते हैं ? क्या राधिकाजी
के समान आज और कोई धन्य है ?

परन्तु आगे चलकर निरीक्षण के बाद यह प्रश्न उठेगा कि
इस अवसर पर इन्होंने अपने साथ यह मुरली भारस्वरूप क्यों

ले रखी है। हमने तो सुना है कि नायक-नायिका के संयोग के शुभावसर पर तो गलमाल-जैसी सुंदर और प्रिय वस्तु भी त्याग दी जाती है, क्योंकि यह उनके मिलने में बाधा उत्पन्न करती है, और कुछ नहीं तो रंग में भंग तो अवश्य कर देती है। “हाथे नारोपितो कंठे मया विरलेपभीरुणा” यह तो सब जानते ही हैं। तो फिर उसी प्रकार बाधास्वरूप यह मुरली का क्यों साथ ली है। क्या उनके प्रेम को उस समग इतना अवसर प्राप्त था कि परस्पर के आनंद को छोड़ एक और चीज की ओर ध्यान बँटाते, और उसकी रक्षा की चिन्ता में रहते। और फिर भूलने के समय तो एक हाथ में मुरली रखना और केवल एक ही हाथ से और काम लेना तो बड़ा कष्टदायक होगा। न-जाने कब भूने से छूट पड़ें। परंतु यह सब होने पर भी मुरली का साथ रहना किसी और गूढ़ कारण का शोचक है। क्या आपका यह खयाल है कि जिस मुरली ने कितनी ही बार बिछुड़े हुए विरह-व्यथित इस दंपती को अपनी मधुरध्वनि द्वारा मिलाया है, उसका अर्थ उनके सुख के शुभवसर पर परित्याग कर दिया जाय ? क्या वही मुरली जिसकी सुखद तान ने भ्रजांगनाओं को मुग्ध कर कृष्ण के प्रेम में सराबोर किया था, उनके इस संपत्तिकाल में छोड़ दी जाय ? क्या जिस मुरली ने बहुत-से रास रचाए और कृष्ण का

राधिकाजी के सहित प्रेम-रस-शान कराया, वही चिरसंगिनी अब एक पटोही की तरह विस्मृत कर दी जाय ? नहीं-नहीं, ऐसा समझना बड़ी भूल है । कृष्ण-राधिका ऐसे कृतज्ञ नहीं हैं । उनसे ऐसा हो नहीं सकता । तभी तो उन्होंने इस निर्जीव वस्तु को भी प्रेम-सहित अपने आनन्दोत्सव में सम्मिलित किया है । सचमुच, वनमाली गोपाल बड़े ही कृपालु हैं । हमें तो यह इच्छा होती है कि हम भी कहीं उनके मूले की बैठक को निर्जीव लकड़ी बनकर उनके उस समय के सुखस्पर्श का सुख अनुभव करते ।

अटा पर अप्सरा

चाड़कै नार अटार, निरखि रही घन की छटा ;

गावत राग मल्लार, पायल की मंकार सन ।

सावन-भादों की काली घटाएँ नभ में घिरी हुई हैं, जो बड़ी सुंदर प्रतीत हो रही हैं । एक सुंदरी अटारी पर बैठी हुई उसकी छटा निरख रही है । सुमधुर स्वरों से मल्लार राग गा रही है । पैरों की पायल बजाकर उसकी मंकार से ताल का काम ले रही है । वास्तव में बड़ा सुंदर दृश्य है । वर्षा-ऋतु की श्याम घटाएँ सचमुच निराली ही छटा दिखला रही हैं और उस समय मल्लार राग सोने में सुगंध का काम दे रहा है । और उस पर खूबो यह है कि नायिका के कल-कंठ से उसका गाया जाना और उसी के पैरों की पायलकी मंकार की ताल का दिया जाना ! बांह-बाह, क्या कहें बड़ा समझा रंग जमा है, और यह सामान कहाँ जुटा है ? अटारी पर । तभी तो दुगुना मजा आ रहा है । घन की छटा, ऊँची अटा, दर-असल लुत्क है चटपटा ।



बादलों की बदाबदी

उत उमरी कारी पटा, इन उमरे मम नैन ;

बदाबदी बरसन लगे, सावन में हुल देन ।

बदाबदी का आर्थिक संसार में खूब धौसा बजता है ।

जहाँ देखो तहाँ बदा-ऊपरी है । यहाँ तक कि बेचारे छोटे-छोटे व्यापारियों और जन-साधारण को पीसने में इस एजसी प्रथा ने आजकल की बिजली की चकियों से भी ज्यादा धम किया है । फलस्वरूप जिधर देखो, हाहाकार मच रहा है । मामला इतना बढ़ गया है कि अगर किसी सौदागर का सिका बाजार में जम गया है, उसके माल की लोग क्रूर करने लगे हैं, और वह प्रचुर परिमाण में माल पैदाकर बेचने लगा है, तो उसकी यह बढ़ती औरों से देखी न जायगी । वे उससे और अच्छा, बटकोला, मड़कीला, सस्ता और उससे भी ज्यादा परिमाण में, माल पैदा करेंगे और बेचेंगे । यहाँ तक कि कोठिया ऐसी करेंगे कि किसी पहलू से उसकी शाल नष्ट कर देंगे और अपनी धाक जमा लेंगे । परिणाम यह होता है कि इस प्रकार की बदा-ऊपरी से और बिना खास माँग के प्रचुर परिमाण में माल बनाने से पूरक-शक्ति पैदा हो जाती है, और माँग

पट जाती है। फल यह भी होता है कि बाजार में हलचल, द्वेष-भाव और एक दूसरे के प्रति वैमनस्य फैलता है। फिर इस प्रकार की कार्यवाही तो 'मार्केट टाइम' बाजार के दिनों में भीषण रूप धारण कर लेती है।

हमूह यही हाल है हमारी नायिका के विषय में। सावन का महीना है। नायिका पति के विरह से अत्यंत व्याकुल है। इसी अवसर को उपयुक्त समय जान, वेदर्द बादलों का समूह नायिका का जी जलाने केलिये घिर आता है, और लगता है गाज-बाज और चमक-कमक के साथ बरसने। इधर इस समय में प्रिय की सुधि कर दग्धहृदया नायिका के भी नेत्र अश्रु-मोचन करने लगते हैं। ज्यों-ज्यों बादल रंग जमाकर ज्यादा-ज्यादा मेह बरसाते हैं, त्यों-त्यों नेत्र भी प्रतिद्वंद्वी बनकर बादलों के साथ बरसने में होड़ा-होड़ी करते हैं। फल यह होता है कि इन हुड़दंगों के झगड़े में बेचारे शरीर मारे जाते हैं। लड़ते हैं वो मदमस्त मतंग, पर पिस जाते हैं बेचारे कोमल पादप। इनका 'कंपिटेशन' इतना भीषण रूप धारण कर लेता है कि वधर तो बेचारे दीन-हीन जन-समूह की, तो इधर बेचारी विरहिनी नायिका की शामत आ जाती है। परंतु ये दोनों किसकी सुनें, ये तो अपनी-अपनी धुन में सवार हैं। इन बादलों की मूर्खता को तो देखो, ये गँवार यह नहीं समझते कि मला

सखी का स्नेह

निसि कारी घनघोर नम, गतिबाधक सब साज ;

विघ्नत सखि पै तीय कहै, मार्ग दिखावन काज ।

रात्रि का समय है । आकाश में घनघोर पटाओं का पटा-
टोर है । अंधकार इतना घना है कि हाथ-को-हाथ दोसना
मुश्किल है । मार्ग भी अपरिचित है । इस भयंकर समय में
अपने प्यारे के प्रेम में पगी हुई एक नायिका पर से बाहर
निकली । एक तो खी स्वभाव से ही भीरु और कोमल चित्त-
वाली होती है, विस पर प्रकृति का यह भयंकर रूप ! वह तो
बढ़े-बढ़े साहसी, धीर और वीर पुरुषों तक के हृदय को दिला
देनेवाला है ।

परंतु पाठकगण ! यह न समझिए कि नायिका इस दरय
को देखकर डर गई है, और हतारा हो पीछे लौटने का विचार
कर रही है । वह तो अपने प्यारे से मिलने को अत्यंत उत्सुक
हो रही है । उसका हार्दिक प्रेम इतना प्रबल है कि जिसके
आगे यह सब भयोत्पादक साज कुछ चीज नहीं है । मार्ग
अपरिचित है और घोर गर्जन करते हुए बादल भी न-जाने
कब मूसलाधार बरसने लगें ; रास्ता भी एक सपन अंगण में

भूले की भूमक

सौवन में झूलो परो, सखि रंग तिय मुलराय ।

साय बीच प्रकटे पिया, 'मरी' कहत लपटाय ।

वर्षा-श्रुतु भी क्या ही आनंदकारी है। इसमें तो वृक्ष-विटपों के साय-ही-साय मनुष्यों के थके-माँदे मन भी मोद से मरने लगते हैं। उनमें नूतन इच्छारूपी कोमल पत्ते निकलने लगते हैं। प्रेमरूपी पुष्प प्रस्तुतित होने लगते हैं, जिनसे ऐसी हृदयहारी सुमधुर सुगंध निकलती है कि सूँघनेवाले का मन प्रेम में मस्त हो जाता है। सारी बनस्पती सुंदर नायिका की नाई हरो साड़ी पहने अत्यंत रम्य प्रतीत होती है, और वसुंधे शरीर से वह मनोहारी गंध निकलती है, जो प्राणियों के जी में नवजीवन का संचार करता है। जगद्-जगद् निर्मल जल से भरे जलाराय और उनमें कूने हुए कमल और बुसुद अत्यंत रोचक मालूम पड़ते हैं।

इसी अवसर पर प्रेमी-प्रेमिकाओं में अनेक प्रस्फुर की बेलि-धीमारे हुआ करता है। वहाँ जल-झीड़ा, तो वहाँ बनरिराद, वहाँ रास-रचना, तो वहाँ और-और रंग-राग। उन्हें यह है कि कोई-न-कोई प्रेम-सोला होती हो रहती है।

बर्बाद-कात में सावन का महीना है । नायिका ने मदन वन
 में एक वृक्ष के नीचे झूला झाल दिया है और सखियों के संग
 पार्श्व-वार्गी झूल रही है । इनको नायकजी का तो खयाल है ही
 नहीं । बेपारे वे भी बेपारी हैं । झूला झूलने में उनको भी आनंद
 आता है । परन्तु वे इस आनंद में बचिग रक्ने मर हैं । प्रेमियों
 को अपना प्रेम प्रकट करने में कौन रोक सकता है । आतिर
 वे भी होंता-स्यस पर आ पड़ेये, और वहाँ एक कुत्र की ओर
 में दिन रहे, और पुष्पाव बैठे सखियों की प्रेम-मरोनिशंक
 बातें गुन-गुनकर मन-हो-मन मुद्रित होने लगे । आप तो सबको
 देख रहे हैं, पर स्वयं किसी को दिग्याई नहीं देते । देखते-
 देखते उनके मन में उस रंग-राग में सन्मिलित होने की वस्तुक्ता
 बढ़ने लगी । वे मौन्य देखकर प्रकट होने का विचार —
 लगे । इसी समय नायिका ने झूले पर पदार्पण किया
 झूलने लगी । सखियों ने बात-हो-बात में दो एक झूले
 ओर से लगाए कि स्वभाव-भीरु, कोमल-हृदया नायिका के ।
 छड़ने लगे । वह भय से बोल उठी 'मरी' । परन्तु ईस
 सखियों को तो इस 'मरी' में और मजा आता था, कि
 उस बेचारी के होश छड़ रहे थे । उसका वह कण्ठ स्वर कौ
 सुने ? ऐसे मौकों पर तो ईश्वर ही सहायक होते हैं । अचानक
 मौका देखकर नायकजी जागते जागते से अपने और नायिका

को बचाने के बहाने बीच ही में उसको पकड़कर अंक से लगा
 अपनी इच्छा पूर्ण की। इनको देखकर नायिका सहम गई।
 वह शर्म से सिमिट गई, पर करे क्या ? वसी ने तो बार-
 बार 'मरी-मरी' कहकर बचाने का निर्देश किया था। नायकजी
 ने कोई बुरा काम नहीं किया, जो उसको बचा लिया
 हाँ, इतनी उनकी अवलमंदी थी कि नायिका का भो भय निवारण
 किया और अपने मन की अभिलाषा को भी पूर्ण किया

प्रेम-प्रस्वेद

आई है री शरदऋतु, सखी पाकरस सेव ;

प्रिय के द्वियों लगत ही, प्रकटत प्रेम वसेव ।

प्रायः शरद-ऋतु में नायिकाएँ पाक-रस का सेवन किया करती हैं । यह इसीलिये कि पाक-रस सात्विक और पुष्ट पदार्थों के सम्मिश्रण से बनाए जाने के कारण बलदायक और गुणकारी होता है, और शरद-ऋतु की कड़ी शीत को मिटाकर शरीर में गर्मी का संचार करता है । हमारी नायिका को भी उनकी प्रिय सखी ने शरद-ऋतु में पाकरस सेवन करने की सलाह दी । भला सखी होकर ऐसी सलाह न देती, तो और कौन ऐसी सम्मति देता । उस हिताभिलाषिणी सखी ने तो उसके सुख के लिये यह राय दी थी । परंतु क्या आप खयाल कर सकते हैं कि इसका उत्तर नायिका ने क्या दिया होगा ? क्या उसने सखी को अपने हितचिंतन के लिये धन्यवाद दिया और उसकी सलाह मानकर पाक बनाने का विचार किया ? नहीं-नहीं, उसकी तो यह सलाह उलटी हानिकारक जैसी । उसने यह सं. . . कि अगर पाक-सेवन किया जायगा, तो यह निरपय है । उसकी पुष्टता के कारण शरीर से, शरद-ऋतु के होते हुए

भी प्रस्वेद बहने लगेगा । मतलब यह है कि उसने जान लिया कि सखी की सलाह का सारांश यही है कि पाक-सेवन से शरीर में उष्णता आ जायगी, और शीत मिट जायगी । परंतु इस याज्ञार से लाए जानेवाले सौदे की तरह पाक-रस के द्वारा लार्दे जानेवाली उष्णता का तो उसको खयाल तक नहीं था, क्योंकि उष्णता तो उसके घर की ही चीज थी । जब चाहती, तब प्रिय से थंऊ-भर मिलती, और इस प्रेम-मिलन से हृदय में जो उष्णता आ जाती, वह सौ शीतकाल की सर्दी मिटाने को पर्याप्त थी । यही नहीं, यह उष्णता तो इतनी प्रबल होती कि शीतकाल में भी सात्विक प्रस्वेद उसके बदन से प्रवाहित हो पलता । गर्मी प्राप्त करने का जब यह स्वाभाविक हीतरोज्ज उसके पास मौजूद था, तो भला वह कृत्रिम-रीति से, पाक-सेवन से, उष्णता लाने की इच्छा ही क्यों करती । अतः उसने सखी इस प्रस्ताव का प्रेमपूर्वक खंडन किया और इसका कारण भी उसे सुमा दिया । नायिका ने दूध दूरदर्शिता का काम किया, नहीं तो अगर बिना सोचे-समझे सखी की सलाह स्वीकार कर लेती, तो फलस्वरूप जो प्रिय के प्रेमालिंगन से प्रकटते हुए प्रेम-प्रस्वेद के साथ-ही-साथ जो पाक-रस-प्रभूत प्रस्वेद प्रादुर्भूत होता, तो दोनों प्रस्वेद-धागाओं के मिलते हुए इस प्रवाह में न जाने कितने प्रेमी प्रवाहित हो जाते ।

यादल में बिजली

कारी सारी पहिनेके, रमत स्याम सन फाग ;

बिजुरी जिमि धन में चमकि, दमकि कमकि गद् भाग ।

शीतकाल और वसंत की वयःसंधी का समय है । न तो फ्यादा गर्मी और न सर्दी ही है । फागुन का महीना और होली के दिन । स्त्री-पुरुष मदमस्त होकर फाग खेलने में लगे हुए हैं ।

चारों ओर गुलाल के लाल-लाल यादल चढ़-उड़कर लाल पानी की झड़ लगाए हुए हैं । यादरी अंगों के साथ-साथ लोगों के भीतरों मन भी रँग

नवेली राधा ने भी अपने सौंदर्य को चमकाने के लिये अथवा स्याम के रंग में रंग मिलाने के लिये स्याम साड़ी पहनी है । वे साढ़ा के काले रंग से कृष्ण के मन को लाल रँगना चाहती हैं । इसी बेरा में वे हिम्मत करके गिरिधारी के साथ फाग खेलने निकली हैं । परंतु खेल आरंभ होते ही रँगोले रसिकराज ने जल-भरी पिपकारी बहाल उसको अच्छी तरह से रंग में मराबोर कर दिया । भीगी स्याम साड़ी से पानी मारने लगा और अंग पर साड़ी के पिपक जाने से मुहौल अंग-प्रत्यंग दिखाई देने लगे । इसी

समय, वे अभी नबोदा होने के कारण लजित होकर भाग गईं ।

इस चंचल भगान का हो फवि ने वर्णन किया है । जलाह्न होकर भरते हुए काले पटरूपी मेघ में बिजली की तरह चंचलता के साथ अपने अंग की चमक-दमक दिखाकर, लजित होकर और पायल, किंकिनी, नूपुर इत्यादि आभूषणों को ममकाती हुई, वे भाग गईं ।

क्या आप समझते हैं, वे अकेली ही भाग गईं ? नहीं-नहीं, यदि आप ऐसा समझते हैं, तो भदय सलती पर हैं । बेचारी अबला ऐसी घन अंधियारी में अकेली होती, तो डर न जाती । वे अपने साथ मनमोहन के मन को और लज्जा सखी को लेती गईं ।

मंनार का सार

काग ने दबोलागल, कवन बीने मेर,

बिबन मुरर बन्दु मर, जेने बंद बंदर।

जिने बंदोत को बंद प्याग मगता दे, बंद को देखने-देखो
बर कभी नही आगा, उमो बहार मकल मुंदर बन्दुआ
का निरोछा करने हुए, मौंदर्योगमना में मेरा जीवन
क्योंग हो।

मौंदर्योगमना में क्या सार है, यह वे ही लोग जान सकते
हैं, जो इस जगमना को कर चुके हैं। सौंदर्य ही इस सारे
सृष्टि का गूंगार है। इस के बिना यह संसार केवल एक भार
है, जिसमें गुजर होना दुरवार है। यों तो सुंदर वस्तु सबको
ही अच्छी लगती है, किंतु जो इसके कदरदान हैं, वनको उसके
देखने से कुछ निपला ही आनंद आता है। गुल सबको भाय
है, किंतु बुलबुल को उसे देखकर कुछ और ही मजा आता है।
चंद्रमा को खूबो चकोर से पृथिए। मैघों की रोमा चाउक
बतला सकता है। फिर जो सौंदर्योपासक हैं, वनका तो कहना
ही क्या है ? जिधर दृष्टि डालते हैं, वन्हें सौंदर्य-ही-सौंदर्य
नजर आता है। रयाम पन में वन्हें कृष्णचंद्र दिखलाई देते हैं।

कोयल की बिलवार में उन्हें मनमोहन की मुरलिवा की मधुर तान सुनाई पड़ती है। नायिका के मुखदे में उनको निष्कलंक चंद्र के दर्शन होते हैं। मृग, खंजन और मीन को देखकर वे किसी नायिका के सुंदर नेत्रों के ध्यान में मग्न हो जाते हैं। प्रकृति-नटी नित उनकी आँखों के सामने नाचती रहती है। चिड़ियों के बहबहाने में वे प्रकृति-देवी के कल-कंठ से सुमधुर मंगीत का रसावदान करते हैं।

सारांश, यह सारा संसार उन्हें सौंदर्यमय प्रतीत होता है। प्रत्येक वस्तु में उन्हें परब्रह्म परमात्मा के पवित्र दर्शन होते हैं। अंत में वे सौंदर्य के उस लोक में पहुँच जाते हैं, जहाँ केवल सचे सौंदर्योपासकों की ही गति है, और जहाँ की सुंदर माँकी के दर्शन होते ही आत्मा उस महाकवि में लय हो जाती है, जिसने इस संसाररूपी महाकाव्य की रचना की है।

सौंदर्य की शक्ति

है प्रभाव सौंदर्य को, तबपे एक समान ।

जनक, जनक की प्राप्ति के, जन को प्रिय प्रिय प्रिय ।

कौन ऐसा है, जो सौंदर्य को देखकर प्रसन्न नहीं होता ।

किस पर इसका प्रभाव नहीं पड़ता ? इसका असर सब पर एक-सा होता है । सुन्दर वस्तु किसे प्रिय नहीं लगती ? कमल अपनी सुन्दरता के ही कारण जल को प्राणों के समान स्वागत संगता है । सभी तो जल हमेशा उसे अपने शोरा पर विराग रखता है । सौंदर्य के प्रभाव के सामने स्वभाव का प्रभाव काहू हो जाता है । जल का यह स्वभाव है कि कोई भी वही न हो, बस, हाथ पड़ने ही उसको मुचों देता है । किन्तु कमल की कमनीयता को देखकर वह अपने काम करना मूढ़ जाता है । सौंदर्य के कारण नमकी प्रकृति में परिवर्तन हो जाता है, और तबतक यह है कि कमल ही नहीं, बल्कि बाग़ी जो कमल की प्राप्ति के हैं, उनको भी जल कमल ही के समान प्रिय समझता है—उन्हें कभी दुखीता नहीं, बल्कि उनके मन अन्य प्राणिवालों की भी रक्षा करना है । जो प्रेम-पत्र के पवित्र हैं, उनमें यह बात दिखी हुई नहीं है कि जिस जल

जिसको हम प्यार करते हैं, उससे कुछ भी संबंध रखनेवाले हमें उसी की तरह प्यारे लगते हैं ।

शेक्सपियर ने कहा है कि सोने की अपेक्षा सुंदरता को चोर जल्दी लगते हैं । यह बात शेक्सपियर ने बिलकुल पते की कही है । किसी ने कहा है—‘सुवर्ण को ढूँढते फिरते, कवि, व्यभिचारी, चोर ।’ हम मानते हैं कि ढूँढते फिरते हैं, किंतु तभी तक कि जब तक सौंदर्य के दर्शन नहीं होते । सौंदर्य को देखते ही चोर चोरी करना भूल जाता है, कवियों की कलम उनके कर में ही रह जाती है । सौंदर्य को देखकर कवि और उनकी कलम दोनों भौचक्के-से रह जाते हैं । अब रहे व्यभिचारी, सो उन बेचारों को तो सौंदर्य को देखकर मुग्न ही नहीं रहती ।



ज्योतिस्वरूप की ज्योति

राधा हिने निवास हित, कान्हि ज्योतिमय भान ।

ज्योति सिद्ध निकस्यो हिने ताहि दिवाकर जान ।

वेदांतियों ने ईश्वर को 'ज्योतिमय', 'ज्योतिस्वरूप', 'विश्व इत्यादि कहकर उसके गुण-भान किया है। उनके मतानुसार इसका शरीर ज्योतिमय है, केवल ज्योति का बना हुआ है। इन्हीं ज्योतिस्वरूप भगवान् की प्रियतमा राधिकाजी हैं। वे इनको बहुत ही प्यारी हैं। प्यारी वस्तु को निवास के लिये हमेशा सर्वोत्कृष्ट स्थान दिया जाता है। जब कोई हमारा प्यारा हमसे मिलने आता है, तो हम स्नेहवशा उसको नित्य अपने साथ ही रखते हैं। अपने दिल का कुल हाजिर उसमें कहते हैं।

हृदय से बढ़कर शरीर का और कोई स्थान उत्कृष्ट नहीं। वही प्रेम का स्थल है, वहीं से प्रेम-स्रोत का प्रवाह प्रवृत्त होता है। मनुष्य के सबसे उत्कृष्ट विचार हृदय से ही उठते हैं अतः उचित ही था कि भगवान् अपने प्राणों से भी त्याग प्रेयसी राधिका को उसी स्थान में रखते। परंतु वह स्थान तब पदले से ही अन्य के अधिकार में था। उस जगह ज्योति की

जगमगाहट थी । अतः उन्हें यह कार्यवाही करनी पड़ी कि जितना स्थान राधाजी को सुखपूर्वक निवास के लिये चाहिए था, उतना ही ज्योति-पिंड वहाँ से निकाल लिया और आकाश को शून्य ज्ञान और दान का उपयुक्त पात्र समझ, वह ज्योति-दान उसी को दिया, जिसको आज भी वह सूर्यरूप में अपने हृदय में धारण करता है ।

नेह का न्यायालय

अगरि ने आराधना उदात्तता से की है।

एक भाग मध्य, मध्य-मध्य ने न्याय की।

आरा ही की अराधना है और आरा ही पर मुकदमा दायर
किया गया है और आरा ही जज है। अतः न्याय करिएगा।
आरा ईसाक-ममर हाकिम है। देखना, कैमला सोच-मनकर
मुनाना। मामला नायक है। आराको अपने ही खिलाफ
कैमला मुनाना है। यह बड़ी हिम्मत का काम है।

बेराक, न्यायाधीश साहान न्याय की मूर्ति होना चाहिए।
तभी न्याय की आरा की जा सकती है। सायल का ईसाक के
लिये बार-बार चिल्लाना वाजिब है। आजकल अदालतों में
जिस क्रिम की कार्यवाही होती है, जैसा ईसाक होता है वह
किसी से झिपा नहीं है। आजकल ईसाक पाना दुस्वार है।
किंतु मानव-स्वभाव है कि आरा बनो ही रहती है।
सायल क्यों आरा से हाथ धोवे। जो कुछ होगा,
जायगा। अगर ईसाक के लिये इस कदर करियाद
भी जो न्याय का गला घोंटा जाय, तो फिर
कि जैसे हो वैसे उस सबसे बड़ी

में पहुँचे कि जहाँ का न्यायाधीश सदा न्याय ही किया करता है; जिसके सामने भिखारी और बादशाह दोनों एक हैं।

मगर शायद हम गलती करते हैं। कबिजी ने तो नेह के न्यायालय में मुक्तदमा दायर किया है, जहाँ पर जो हारता है, वही जीतता है। नेह का न्यायालय ही जो ठहरा।

विधि का विज्ञापन

नम पाती विधि कर लिखी, छन-छन करन बखान;

काटू के रक्त न कभी, सब दिन एक समान ।

कोई चतुर नायक किसी मानिनी नायिका से कह रहा है कि तू इतना मान न कर । देख, यह रूप-यौवन हमेशा नहीं रहता है । अतः मान का परित्याग कर प्रेमपूर्वक मुक्तमिल । तू देखती नहीं है कि दुनिया में कोई भी चीज सदा अव्यय नहीं रहती है । आकाश की ओर देख । यह विधि के हाथ का लिखा हुआ पत्र है, और क्षण-क्षण पर यह पत्र इस बात को बतलाता है कि सब दिन एक समान कभी किसी के नहीं रहते ।

वास्तव में बड़ी सुंदर पाती है । विधि की पाती जो ठहरी, सुंदर क्यों न हो । भला इस पाती को पढ़कर कौन मानिनी मान छोड़कर अपने प्राणपति के गले न जा लगेगी ।

विधि ने 'एडवर्टाइज' करने का अच्छा तरीका निकाला है । यह तो एडवर्टाइजमेंट के आटे में अगुआ अमरीका से भी आगे बढ़ गया । आकाश से बढ़कर इसके लिये अन्य कौन स्थान उपयुक्त हो सकता है ? यहाँ से यह विधि का विज्ञापन

बराबर विश्व की आँखों के सम्मुख बना रहता है। इस विहापन की सत्यता में शक कर ही कौन सकता है ? कौन नहीं जानता कि इस परिवर्तनशील संसार में परिवर्तन का पुच्छ प्रत्येक पदार्थ के पीछे लगा हुआ है ? प्रकृति का नियम ही ऐसा है। फिर-इसे कौन टाल सकता है ? सूर्य कभी उदय होता है, तो कभी अस्त होता है। पूर्व में उदय होता है, तो पश्चिम में अस्त होता है। कभी दिन है, तो कभी रात। कभी अंधेरी रात है, तो कभी चाँदनी। कभी चंद्रदेव के दर्शन होते हैं, तो कभी केवल तारे ही टिमटिमाते हुए नजर आते हैं। कभी निर्मल नभ नजर आता है, तो कभी धन की घटाएँ अपनी छटाएँ दिखावाती हैं। कभी इंद्र-धनुष का आनंद है, तो कभी बिजली की बहार है। कभी वर्षा है, तो कभी वेगवान् वायु का बवंडर।

सारारा, हम किसी भी वस्तु को स्थायी रूप में नहीं पाते हैं। अतः हमको किसी भी कार्य को अनुकूल अवसर मिलते ही शीघ्र कर डालना चाहिए, और मुख में पूलना नहीं चाहिए तथा दुःख में पयसाना नहीं चाहिए।

नामों को चाहिए कि नायिकाओं के मान करते ही उन्हें विधि की पाती पदा दिया करें। पढ़ते ही उनका सारा मान कातर हो जायगा।

प्रेम-प्रताप

जहाँ प्रेम राज-रहित, धम नहीं तहाँ लसत ।

करन परत जो धम तरु, सब रुह उई मुदात ।

प्रेम में परिश्रम नहीं प्रतीत होता, बल्कि परिश्रम यदि करना भी पड़े, तो और अच्छा लगता है । बिलकुल ठीक है । इसको ताईद वे लोग करेंगे, जो प्रेम की भक्ति करते हैं । जन्म-भूमि के प्रेम के कारण मनुष्य कैसी-कैसी मुसीबतों का सहर्ष सामना करने को तैयार होता है । माता अपने बाल-बच्चों के प्रेम में कैसे-कैसे कष्ट सहन करती है । प्रेमी अपने प्रेमिका की आज्ञा का पालन कितना प्रेमपूर्वक करता है, फिर चाहे उसे उसमें कितनी ही तकलीफें क्यों न उठानी पड़ें । दो मित्र एक दूसरे का काम कैसी प्रसन्नता से करते हैं । प्रेम के प्रताप से मृत्यु-शय्या पुष्प-शय्या के सदृश प्रतीत होती है ।

किंतु—‘यह प्रेम को पंथ कराल महा, तलवार की धार वै घावनो है ।’ यह प्रेम ही की शक्ति है कि पतंग दीपक पर न-हँसता अपने प्यारे प्राणों को न्योछावर कर देता है ।

... की मुहब्बत में आशिकों को महान् मुसीबतों मुकामला करते देखा गया है ।

प्रेम परमेश्वर है । कई दफे देखा गया है कि इस्कमजाजी
इस्क इक्कीकी में तबदील हो जाता है । किसी ने कहा है—

बुतों के इस्क से हम मरक' किया करते हैं ;

यक बयक लौ है खुदा से तो लगाना दुस्वार ।

एक शायर के खुदा से खुद अपने मुँह से फरमाते हैं कि—

गर मुक्तसे मिला चाहे तो कर सिबदा बुनों को ;

बुत भी ही मूरत हैं और बुतखाना में ही हैं ।



सब इस बात को प्रमाणित करती हैं कि ये सब 'वसुधैव कुटुम्ब-
कम्' के सिद्धांत का अनुसरण करते हैं। इनके हृदय में सबके
प्रति प्रेम है। वस, इसी प्रेम को ज्ञान कहते हैं। प्रेम की भक्ति
से उन्नत सच्चे ज्ञान की प्राप्ति होते ही, बंधारी मुक्ति हमारे
चरणों में लोटने लगती है। भला जब प्रेम के प्रताप से सच्चे
ज्ञान की प्राप्ति हो गई, फिर क्या है। मुक्ति तो दासी के सदृश
हमारी आज्ञानुसार सेवा करने को तैयार रहती है।

पाठको ! प्रेम एक महान् शक्ति है। इसके सहारे से वास्तव
में मनुष्य नर से नारायण बन सकता है। प्रेम की उपासना
करते-करते मनुष्य स्वयं परमेश्वर बन जाता है, क्योंकि प्रेम ही
तो परमेश्वर है। क्या यह बात आपसे छिपी हुई है कि प्रेम के
वशीभूत होकर भगवान् भक्तों को तुरंत दर्शन देते हैं ? अब
इसका रहस्य आप समझ लीजिए। पहले कहा जा चुका है कि
प्रेम ही परमेश्वर है। वस, क्यों ही भगवान् के प्रति भक्तों का
प्रेम पूर्णता को प्राप्त हो जाता है, त्यों ही वही जनक प्रेम
परमेश्वर के रूप में उनकी आँखों के सम्मुख उपस्थित हो
जाता है।

“कृष्णात् परं किमपि तत्त्वमहं न जाने ।”

इति शुभम्

सुधा की 'साहित्य-संख्या'

प्रकाशित हो गई !

उसमें

१२२ पृष्ठ, १२ चित्रों विषय, ३ काटून और १००० पृष्ठों
(सादे) विषय हैं । पर

मूल्य केवल १।।)

देगा बुद्ध, प्रकाशपूर्ण और सामान्य विवेकात्मक ज्ञान मनुष्य के
संसार में कभी नहीं प्रकाशित हुआ । सभी प्रसिद्ध, प्रसिद्धि के
प्रतिभासों की ओर से और कविता के लिये बुद्ध केवल प्रकाशित विषय
मूल्य है । सादरों का यह बुद्ध विवेकात्मक मूल्य विवेकात्मक । बुद्ध के

प्रधान संग्रह—

श्रीगणेशजी शर्मा

(सामान्य दिदी साहित्य साहित्य)

है । १२२ पृष्ठों में १२२ पृष्ठों के साहित्य के साहित्य । साहित्य के
साहित्य के साहित्य के साहित्य के साहित्य के साहित्य के साहित्य के

सुधा का राजमार्ग

साहित्य के साहित्य के साहित्य के साहित्य के साहित्य के साहित्य के साहित्य के
साहित्य के साहित्य के साहित्य के साहित्य के साहित्य के साहित्य के साहित्य के
साहित्य के साहित्य के साहित्य के साहित्य के साहित्य के साहित्य के साहित्य के
साहित्य के साहित्य के साहित्य के साहित्य के साहित्य के साहित्य के साहित्य के

साहित्य के साहित्य के साहित्य के साहित्य के साहित्य के साहित्य के साहित्य के

व्यवहारक "सुधा", सम्पादन

